इस पुस्तक का मूल्य प्रचारार्थ
लागतमात्र रखा गया है

—प्रकाशक

मूल्य : बीस रुपये (Rs. 20.00)

65 वाँ संस्करण : 2009 © राजपाल एण्ड सन्ज़
BHAKTI DARPAN (Religion) by Mahashay Rajpal

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110 006

website : www.rajpalpublishing.com
e-mail : mail@rajpalpublishing.com

ओ३म्

भक्ति-दर्पण

महाशय राजपाल
द्वारा आर्यसमाज के अनेक विद्वानों के सहयोग से रचित

राजपाल

भेंटकर्ता–

पं. ओमप्रकाश शास्त्री (पुरोहित)

आर्यसमाज अमरावती (महाराष्ट्र)

9960395507

केवल सात रुपये में भक्ति दर्पण प्राप्त करें

माता-पिता की पुण्य स्मृति

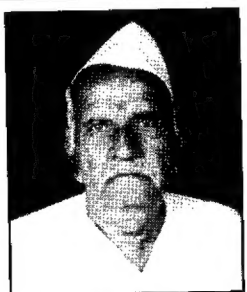

माताजी

सौभाग्यवती दुर्गा देवी

पिताजी

गणेशलालजी शास्त्री

पुस्तक मिलने का स्थान–

देवदयानन्द सेवाधाम, सारा साहित्य आधा दाम

न्यू प्रताप क्लॉथ सेंटर, तख्तमल स्टेट, अमरावती

(महाराष्ट्र) फोन नं. : 0721-2576956

दो शब्द

चिरकाल से मैं इस आवश्यकता को अनुभव कर रहा था कि कोई ऐसी पुस्तक रची जाए जो आर्यजनों को आत्मप्रसाद के रूप में दी जाए, जिसके द्वारा सर्वसाधारण को ज्ञात हो कि इस महान्, ईश्वरीय, दुर्लभ मनुष्य-जीवन को सफल बनाने के लिए मनुष्य के क्या-क्या कर्तव्य हैं। मैंने अपने मित्र (स्व.) पं. बृहस्पतिजी आर्योपदेशक के सामने इस आवश्यकता को प्रकट किया। वे मुझसे सहमत हुए और उन्होंने मेरे साथ मिलकर इस उपयोगी पुस्तक को पूर्ण किया। पाठकों को यह हर्ष-संवाद सुनाते हुए मेरा हृदय प्रफुल्लित होता है कि इस छोटी-सी परन्तु अति उपयोगी पुस्तक को आर्यसमाज के रत्नों तथा जनता ने इतना अपनाया है कि थोड़े ही समय में इसके 11* संस्करण निकल गए हैं। इस पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने में मुझे आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं. भगवद्दत्तजी, बी.ए.; पं. परमानन्दजी, बी.ए.; पं. चमूपतिजी, एम.ए.; तथा म. मदनजीतजी आदि ने सहायता दी है, इसके लिए मैं उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

25-6-1925 **राजपाल**

विषय-सूची

1. जीवन की सफलता के साधन (विषय-प्रवेश) 8
2. आर्यों के नित्यकर्म 12
3. आर्यों का समय-विभाग 17
4. चार वर्ण 27
5. चार आश्रम 29
6. आर्यसमाज : नियम, उपनियम, कार्यक्रम 31
7. आर्यसमाज के सिद्धान्त–ईश्वर, जीव, प्रकृति, वेद अन्य शास्त्र–ब्राह्मण-ग्रंथ, वेदों के अंग, वेदों के उपांग, वेदों की शाखाएं उपनिषद्, स्मृतिग्रंथ, सूत्र-ग्रंन्थ, आर्यभाषा भाष्यग्रन्थ, पञ्चयज्ञ, संस्कार, विवाह 36
8. आर्यसमाज का संगठन 47
9. आर्यजीवन की प्राप्ति के लिए कुछ नियम 48
10. आर्यसमाज का विस्तार और काम 49
11. ऋषि दयानन्द-कृत ग्रन्थ 53
12. सोलह संस्कार और उनका समय 57
13. आर्यों के यज्ञ तथा पर्व 61
14. आर्य पर्व-पद्धति 64

15. आर्यों के सामाजिक धर्म 76
16. प्रातःकाल के भजन 77
17. ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्या 79
18. वैदिक सन्ध्या 85
19. प्रणव-जाप 111
20. ब्रह्म-स्तोत्र 112
21. प्रार्थना-भजन 120
22. देवयज्ञ अर्थात् हवन 125
23. ईश्वर-स्तुति-प्रार्थनोपासना-मन्त्र 133
24. स्वस्तिवाचन 138
25. शान्तिकरण 151
26. सामान्य प्रकरण 162
27. दैनिक अग्निहोत्र 169
28. शेष सामान्य प्रकरण 174
29. यज्ञ-प्रार्थना 183
30. पितृ-यज्ञ 184
31. भूत-यज्ञ 187
32. अतिथि-यज्ञ 292
33. प्यारे प्रभु से मिलाप : वैदिक प्रार्थनाएं 293
34. प्रभु-भक्ति के भजन 207

35. ईश्वरोपासना **210**
36. उपासना के भजन **212**
37. धर्म के लक्षण **213**
38. स्वाध्याय की महिमा : कुछ मंत्र **214**
39. सुभाषित-रत्नावली **218**
40. स्वास्थ्य के नियम **221**
41. योग के आसन **226**
42. महर्षि दयानन्द : जीवन परिचय **228**
43. प्रतिज्ञा, गीत, राष्ट्रगीत **236**
44. प्रवेश-पद्धति, शुद्धि का भजन **240**
45. आर्यसमाज की विशेष घटनाएं **248**
46. गायत्री-गान **251**
47. यज्ञ-प्रार्थना **252**
48. वैदिक आरती **253**
49. ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त **254**

भजन-सूची

1. आरती—जय जगदीश हरे 209
2. ईश्वर का जप जाप रे 207
3. उठ जाग मुसाफिर ... 120

4. करो हरि नैया ... 123
5. जय-जय पिता ... 77
6. पूजनीय प्रभो ... 183
7. तेरा नाम ओंकार ... 212
8. दयानन्द के वीर ... 236
9. पतितों को ... 246
10. पिताजी तुम ... 124
11. यह वैदिक ... 247
12. आर्यध्वज गीत 237
13. वेद का राष्ट्रगीत 239
14. विश्वपति के ध्यान ... 121
15. शरण प्रभु की ... 207
16. हुआ ध्यान में ... 78
17. गायत्री-गान 251
18. यज्ञ-प्रार्थना 252
19. वैदिक आरती 353

वैदिक-धर्म-सम्बन्धी किसी भी पुस्तक की आवश्यकता हो तो हमें लिखिए। बड़ा सूचीपत्र मंगवाने पर मुफ्त भेजा जाता है।

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

।। ओ३म् ।।

भक्ति-दर्पण

जीवन की सफलता के साधन

विषय-प्रवेश

भक्ति-मार्ग के यात्रियों, आर्यसमाज अथवा उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाली अन्य संस्थाओं (आर्यकुमार सभा इत्यादि) के सभासदों, स्त्री-पुरुषों तथा पाठशालाओं के विद्यार्थियों के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी परम कल्याण की प्राप्ति के लिए जिन बातों का जानना व स्मरण करना अत्यन्त आवश्यक है, उनका यहां संक्षिप्त रीति से उल्लेख किया जाता है। विस्तृत वर्णन अगले पृष्ठों में किया जाएगा।

(1) आर्यसमाज और उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाली संस्थाओं में प्रवेश करने वाले प्रत्येक सभासद् का कर्तव्य

है कि वह आर्यसमाज के दस नियमों को कंठस्थ कर ले।

(2) प्रत्येक सभासद् को उसके नित्यकर्मों का स्मरण होना चाहिए और वह अपना ऐसा समय-विभाग बनाए जिससे यथासम्भव नित्यकर्मों में त्रुटि न हो सके।

(3) आर्यसमाज के विचारात्मक और क्रियात्मक सिद्धान्तों का बोध प्रत्येक सभासद् को होना चाहिए। उनका विस्तृत वर्णन सत्यार्थप्रकाश में किया है, परन्तु संक्षिप्त रीति से ये सिद्धांत अगले पृष्ठों में वर्णन किए गए हैं।

(4) यदि प्रत्येक सभासद् वेदों और शास्त्रों को पढ़ नहीं सकता, तो न्यून से न्यून उसे यह तो ज्ञान होना ही चाहिए कि वेद कितने हैं, दर्शन कितने हैं, उपनिषदें कितनी हैं, वेदों के अंग तथा उपांग कौन-कौन से हैं। संक्षिप्त रीति से वैदिक धर्म-सम्बन्धी साहित्य का विवरण भी इस पुस्तक में दिया गया है।

(5) प्रत्येक सभासद् को यत्न करना चाहिए कि वह आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों को आर्यभाषा (हिन्दी) में पढ़ सके। महर्षि के ग्रन्थों को समझने

के लिए यह आवश्यक है कि वे आर्यभाषा में पढ़े जाएं। आर्यभाषा अधिक से अधिक एक सप्ताह में सीखी जा सकती है। यदि प्रत्येक भाई-बहन के पास इतना समय नहीं कि ऋषि के ग्रन्थों को पढ़ सके, तो न्यून से न्यून उसे यह तो अवश्य ज्ञान होना चाहिए कि उन्होंने हमारे हित के लिए कौन-कौन से ग्रन्थ किस-किस विषय पर रचे हैं। उन ग्रन्थों के नाम और विषय भी अगले पृष्ठों पर दिए गए हैं।

(6) प्रत्येक आर्य-सभासद् को अपना और अपनी संतान के जीवन का समय-विभाग हर समय स्मरण रखना चाहिए, अर्थात् उसे ज्ञात होना चाहिए कि किस आयु में उसे क्या काम करना उचित है। आर्यों के जीवन का कार्यक्रम विस्तृत रूप से महर्षि दयानन्द ने 'संस्कार-विधि' में सोलह संस्कारों के रूप में दिया है। इस पुस्तक में उन संस्कारों के लाभ, नाम और उनका समय दिया गया है और साथ ही आर्यों के त्योहारों, यज्ञों और पर्वों का भी उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त आर्यों के सामाजिक धर्म, यम-नियम भी लिखे गए हैं।

(7) प्रत्येक सभासद् को सन्ध्या और हवन नित्यप्रति करना चाहिए। नित्यकर्मों में त्रुटि किसी अवस्था में भी नहीं होनी चाहिए। इस पुस्तक में प्रार्थना-मन्त्र, सन्ध्या और हवन-मन्त्र अर्थ सहित दिए हैं।

(8) प्रत्येक सभासद् को प्रार्थना और उपासना के कुछ मन्त्र भी कण्ठस्थ होने चाहिए, जिनको संध्या तथा अग्निहोत्र के पश्चात् पढ़कर, परमात्मा से पापों की निवृत्ति और सुखों की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की जाए।

(9) कुछ प्रार्थनाएं और ईश्वर-भक्ति के भजन भी स्मरण होने चाहिए जिससे कि अपनी सभा में किसी उपदेशक के अभाव की अवस्था में कोई कठिनता प्रतीत न हो एवं प्रत्येक सभासद् प्रार्थना, उपासना तथा ईश्वर का भजन करने के लिए भी उद्यत हो सके।

(10) जिस महान् आत्मा ने हमें इस योग्य बनाया कि हम शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति और अपने धर्म-ग्रन्थों का स्वाध्याय कर सकें उसके विषय में यदि आर्यसमाज के किसी सभासद् को कुछ बोध न हो, तो वह

बड़ी कृतघ्नता होगी। इसलिए पुस्तक के अन्त में दो-चार बातें उनके पवित्र चरित्र के सम्बन्ध में भी दी गई हैं, जिन्होंने सारे संसार में आर्यजाति का सिर ऊंचा किया है।

यदि धर्म के प्रेमी 'भक्ति-दर्पण' का श्रद्धा और प्रेम से पाठ करेंगे तो प्रतिदिन उनका जीवन उन्नत और हृदय विशाल होता जाएगा तथा धर्म में उनकी श्रद्धा और भक्ति बढ़ती जाएगी। अब उपर्युक्त सब बातों का विस्तार से उल्लेख किया जाता है।

आर्यों के नित्यकर्म

ऋषि दयानन्द का कथन है कि 'आर्य' नाम विद्वान्, धार्मिक और आप्त पुरुष का है। अतः आर्यों के नित्यकर्म ऐसे ही होने चाहिए जो धार्मिक आप्त पुरुषों के योग्य हों।

प्रातःकाल जागने के समय से ही नित्यकर्मों का आरम्भ हो जाता है। मनु भगवान् (4-92) कहते हैं :

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत,
धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।

कायक्लेशांश्च तन्मूलान्,
वेदतत्त्वार्थमेव च।।

ब्राह्म-मुहूर्त अर्थात् चार घड़ी रात रहे, उठकर मनुष्य धर्म और अर्थ का चिन्तन करे तथा उन शारीरिक कष्टों का भी विचार करे जो धर्म और अर्थ की प्राप्ति में विघ्न डालने वाले हैं। वेद के तत्त्वार्थ का विचार करे, क्योंकि उस समय बुद्धि स्वच्छ और चित्त प्रसन्न होता है। परन्तु यह तभी हो सकता है, जब गृहस्थ लोग रात्रि के नौ या दस बजे तक सो जाया करें क्योंकि स्वास्थ्य के लिए सात घण्टे शयन करना आवश्यक है। सोने से पूर्व हाथ-मुह धोएं। चारपाई पर लेटने के पश्चात् यदि तत्काल ही नींद न आए, तो दो अथवा तीन बार प्राणायाम करके प्रणव (ओ३म्) का जाप करें, निद्रा आ जाएगी। जिस समय नींद खुले, उसी समय उठकर बैठ जाएं और प्रार्थना के वे मन्त्र ऊंचे स्वर से पढ़ें, जो इस पुस्तक में 'ब्राह्म-मुहूर्त में पढ़ने योग्य मन्त्र' के नाम से दिए गए हैं। फिर धर्म का चिन्तन करने के पश्चात् उस दिन के करने योग्य कामों का विचार करें।

माता-पिता के चरण छुएं, उनको स्नानादि कराएं। स्त्रियां चक्की पीसें अथवा दही बिलोयें—स्मरण रखो, 'जिस घर चाटी-चरखा-चक्की उसकी सारी बातें पक्की'। धर्म का चिन्तन करने के पश्चात् शौचादि से निवृत्त होकर अपनी धर्मपत्नी सहित वायु-सेवन के लिए बाहर जाएं। लौटकर कुछ व्यायाम करें, तत्पश्चात् स्नान कर सारा परिवार मिलकर संध्या, अग्निहोत्र तथा भजन-गान करे। तत्पश्चात् सब नर-नारी अलग-अलग स्वाध्याय में लग जाएं। वृद्ध, युवा, बालक, स्त्री, पुरुष सबको ही प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिए। शास्त्रों का कथन है कि वृद्धावस्था से पूर्व प्रतिदिन मनुष्यों को धर्म-अभ्यास करना चाहिए। धर्म के मर्म को जानने के लिए स्वाध्याय से बढ़कर कोई साधन नहीं है। स्वाध्याय के लिए ऋषिकृत ग्रन्थ सबसे उत्तम हैं। वेदों और शास्त्रों तक पहुंचने का यह एकमात्र साधन है। यदि आलस्य त्यागकर काम करने का स्वभाव हो तो ये सारे काम प्रातः 7 बजे तक समाप्त हो सकते हैं।

इससे निवृत्त होकर सब परिवार यथासामर्थ्य दूध पिए,

अथवा कोई और प्रातराश (कलेवा) करे। फिर अपने काम में लग जाएं। परन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कोई काम धर्म विरुद्ध न हो। भोजन का समय दस-ग्यारह बजे के मध्य का होना चाहिए अथवा जैसी अपनी प्रकृति हो। भोजन का आटा मोटा, अनछना एवं चक्की, खरास व घराट का हो, यन्त्र, (मशीन) का कदापि न हो। पीने के लिए दूध शुद्ध होना चाहिए परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक आर्य के घर में एक-एक गाय हो। इससे जहां दूध विशुद्ध (खालिस) मिलेगा वहां गोरक्षा भी होगी। भोजन से पूर्व पितृयज्ञ और बलिवैश्वदेव-यज्ञ करें। यदि कोई अतिथि आ जाए तो सबसे पूर्व उसको भोजन कराएं। नौकरों को भी पहले भोजन कराना चाहिए, फिर आप परिवारसहित भोजन करें। भोजन चबाकर करना चाहिए। हल्का-सा भोजन तीसरे पहर को होना चाहिए, जिसमें यथासामर्थ्य गव्य दुग्ध अथवा फल हों। रात्रि का भोजन सन्ध्या के सात या आठ बजे तक होना चाहिए। जिस गृह में सायं-प्रातः हवन से वायु की शुद्धि का उपदेश दिया गया

हो, उस गृह में हुक्के की दुर्गन्ध नहीं फैलनी चाहिए। वस्त्र सदा स्वच्छ तथा स्वदेशी और घर वायुयुक्त होना चाहिए। दिन-भर काम कर चुकने के पश्चात् सायं समय फिर संध्या-अग्निहोत्र की तैयारी करनी चाहिए। सायंकाल का अग्निहोत्र और भोजन भी परिवारसहित होना चाहिए। इससे परिवार में प्रेम बढ़ता है।

कभी-कभी आर्य-परिवारों को निमन्त्रण देकर पारिवारिक सत्संग भी करने चाहिए। सन्तानों में सदाचार और धर्म के संचार का यह बहुत अच्छा साधन है।

सोने से पूर्व गृहपति को चाहिए कि बच्चों के हाथ-मुंह धुलाकर उनसे ईश्वर-प्रार्थना के मन्त्रों का उच्चारण कराएं। आर्यसन्तानों को शिक्षा दी जाए कि वे सोने से पहले घर के सब बड़ों को श्रद्धापूर्वक नमस्ते करें। सबसे पीछे माता के पांव छूकर नमस्ते करें। माता आशीर्वाद देकर उनको सुला देवें। अविवाहित लड़कों व लड़कियों को सदैव कठोर लकड़ी के तख्त पर सुलाएं; इससे ब्रह्मचर्य में बड़ी सहायता मिलती है।

बिछौना भी स्वच्छ होना चाहिए। चादर बदलते रहना चाहिए। बिस्तर भी प्रतिदिन धूप में सुखाना चाहिए। रजाई में मुंह ढककर कभी मत सोएं। इससे स्वास्थ्य की बहुत हानि होती है। झरोखे या रोशनदान खुले रहने दें। फिर देखें की प्रातःकाल सारा परिवार कैसा स्वस्थ जागता है। इन्हीं कर्मों से दीर्घायु, उत्तम सन्तान तथा धन की प्राप्ति होती है।

आर्यों का समय-विभाग

शीत ऋतु में—प्रातःकाल 5 से 5.30 बजे तक धर्म और अर्थ का चिन्तन, प्रार्थना-मन्त्रों का उच्चारण और शौच।

5.30 से 6.30 बजे तक वायुसेवन (सैर), व्यायाम और स्नान।

6.30 से 7.30 बजे तक अग्निहोत्र, सन्ध्या और भजन इत्यादि।

7.30 से 8.30 बजे तक स्वाध्याय इत्यादि। यदि समय अधिक मिल सके तो स्वाध्याय अधिक करना चाहिए, परन्तु आध घण्टे से न्यून समय तो किसी अवस्था में नहीं देना

चाहिए। इसके पश्चात् दुग्ध पीकर घर के आवश्यक काम कर लें। फिर अपने-अपने काम पर, दफ्तर अथवा दुकान पर चले जाएं। पत्र-व्यवहार और व्यापार आदि आर्यभाषा में ही करें, सारा दिन धर्मपूर्वक काम करें।

सायंकाल को 6 बजे से 7 बजे तक सन्ध्या, अग्निहोत्र और भजन आदि।

7 बजे से 10 बजे तक खान-पान और परिवार सम्बन्धी आवश्यक काम।

ग्रीष्म ऋतु में—प्रातःकाल 4 बजे से 4.30 बजे तक धर्म और अर्थ का चिन्तन और प्रार्थना-मन्त्रों का उच्चारण और शौच।

4.30 से 5.30 तक वायुसेवन, व्यायाम और स्नान।

5.30 से 6.30 बजे तक सन्ध्या, अग्निहोत्र और भजनादि।

6.30 से 7.00 बजे तक स्वाध्याय, फिर थोड़ा-सा गौ का दुग्ध अथवा लस्सी पीकर यदि घर का कोई काम हो तो उसे कर लें, नहीं तो अपने काम पर चले जाएं।

11 से 12 बजे तक भोजन करें, फिर अपने काम में लग जाएं।

ब्राह्म-मुहूर्त में पढ़ने योग्य मन्त्र

ओं प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे,
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं,
प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम।।1।।

अर्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग प्रभात-वेला में स्वप्रकाश-स्वरूप, परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्ययुक्त, प्राण-उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान्, सूर्य-चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है उस परमात्मा की स्तुति करते हैं और भजनीय, सेवनीय, ऐश्वर्ययुक्त, पुष्टिकर्ता, अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करनेहारे, अन्तर्यामी, प्रेरक और पापियों को रुलानेहारे और सर्वरोगनाशक जगदीश्वर की स्तुति-प्रार्थना करते हैं, वैसे तुम लोग भी किया करो।। 1।।

ओं प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम,
वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्,
राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह।। 2।।

जयशील, ऐश्वर्य के दाता, तेजस्वी, अन्तरिक्ष के पुत्ररूप सूर्य की उत्पत्ति करनेहारे और जो कि सूर्यादि लोकों का विशेषकर धारण करनेहारा, सब ओर से धारणकर्ता, सब कुछ जाननेहारा, दुष्टों को दण्डदाता और सबका प्रकाशक है—जिस भजनीय स्वरूप को इस प्रकार सेवन करता हूं और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सबको उपदेश करता है कि तुम 'जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धारण करने हारा हूं', उस मेरी उपासना किया करो और आज्ञा में चला करो, इससे हम लोग उसकी स्तुति करते हैं।। 2।।

ओं भग प्रणेतर्भग सत्यराधो,
भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वै-
र्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम।। 3।।

हे भजनीय स्वरूप ! सबके उत्पादक, सत्याचार में प्रेरक, ऐश्वर्यप्रद, सत्यधन को देनेहारे, सत्याचरण करनेहारों के ऐश्वर्यदाता ! हमें प्रज्ञा दीजिए और अपने दान पर हमारी रक्षा कीजिए। आप गाय, घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को हमारे लिए प्रकट कीजिए। आपकी कृपा से हम लोग उत्तम मनुष्यों के सहयोग से बहुत वीर मनुष्यों की भांति अच्छे बनें।। 3।।

ओं उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत,
प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य,
वयं देवानां सुमतौ स्याम।। 4।।

हे भगवन् ! आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से हम लोग इस समय उन्नति तथा उत्तमता की प्राप्ति में प्रयत्नशील हैं ताकि हम ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान् होवे। और हे परम पूज्य, असंख्य धन देनेहारे ! सूर्यलोक के स्वामी ! उत्तम प्रज्ञा और सुमति में हम सदा प्रवृत्त रहें ।। 4।।

ओं भग एव भगवाँ अस्तु देवा-
स्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति,
स नो भग पुर एता भवेह।। 5।।

हे सकलैश्वर्यसम्पन्न जगदीश्वर ! आपकी सब सज्जन निश्चय करके प्रशंसा करते हैं सो आप, हे ऐश्वर्यप्रद ! इस संसार और हमारे गृहस्थाश्रम में अग्रगामी और आगे-आगे सत्य कर्मों में बढ़ानेहारे होइये और जिससे सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता होने से आप ही हमारे पूजनीय देव होवें, उसी हेतु से हम विद्वान् लोग सकलैश्वर्यसम्पन्न होके सब संसार के उपकार में तन, मन, धन से प्रवृत्त होवें।। 5।।

भोजन के समय पढ़ने योग्य मन्त्र

ओं अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्य-
नमीवस्य शुष्मिणः।

प्रप्र दातारं तारिष,
ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।।

यजु।। 11। 83।।

हे अन्नपते परमात्मन् ! इस संसार के प्राणी आपका दिया हुआ अन्न खाते हैं। परमात्मन् ! हम स्वास्थ्यवर्द्धक, रोगों के कीटाणुओं से रहित, शुद्ध, बलवर्द्धक अन्न का सेवन करें, अन्नदान करने वाले मनुष्यों को दुःख से पारकर, दो पैर वाले और चार पैर वाले प्राणि-मात्र के लिए आपका दिया हुआ अन्न कल्याणकारी हो।

सोते समय पढ़ने योग्य मन्त्र

(यजुर्वेद का शिव-संकल्प सूक्त)

ओं यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। 1।।

यजु०।। अ० 34। 1।।

अर्थ—जो दिव्यगुणोंवाला मन जागते तथा सोते समय दूर-दूर चला जाता है, जो दूर जाने वाला, ज्योतियों का प्रकाशक ज्योति है, वह मेरा मन अच्छे विचारों वाला होवे।। 1।।

ओं येन कर्माण्यपसो मनीषिणो,
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्व यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। 2।।

यजु०।। अ० 34। 2।।

अर्थ—जिस मन के द्वारा मननशील मनुष्य यज्ञ आदि में वैदिक तथा अन्य कर्तव्य कर्म करते हैं तथा युद्धों के अन्दर धीर और गम्भीर नेता लोग विचार-विमर्श करते हैं, जो अपूर्व शक्ति वाला, पूजनीय लोगों के अन्तःकरण में है, वह मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो।। 2।।

ओं यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च,
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।

यस्मान्न ऋते किञ्जन कर्म क्रियते,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।। 3 ।।

यजु० ।। अ० 34 । 3 ।।

अर्थ—जिस मन के अंदर ज्ञान-शक्ति, चिन्तन शक्ति, धैर्य-शक्ति रहती है, जो मन प्रजाओं में अमृतमय और तेजोमय है, जो इतना शक्तिशाली है कि इसके बिना मनुष्य कोई भी कर्म नहीं कर सकता—सब कर्म इसी की सहायता से किए जाते हैं—वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो ।। 3 ।।

ओं येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्,
परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।। 4 ।।

यजु० ।। अ० 34 । 4 ।।

अर्थ—भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में जो कुछ होता है, वह सब इसी मन द्वारा ग्रहण किया जाता है। पांच ज्ञानेन्द्रियों और अहंकार तथा बुद्धि द्वारा जो यह जीवन-यज्ञ चल रहा है, इसका तथा मन, बुद्धि और कार्यकारी इन्द्रियों

का जो अधिष्ठाता है, वह मेरा मन सदा शुभ संकल्प वाला बने और कदापि अशुभ संकल्प न करे ।। 4।।

ओं यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि,
यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳसर्व मोतं प्रजानां,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। 5।।

यजु०।। अ० 34। 5।।

अर्थ—जिस मन में सम्पूर्ण वेद और सब शास्त्र तथा अन्य सब ज्ञान ओतप्रोत (भरा) रहता है, जिस मन की शक्ति ऐसी है कि जिसमें यह सब ज्ञान रह सके, सब बुद्धिमान् लोग इसी से मन्न करते हैं; वह शक्तिशाली मेरा मन सदा शुभ विचारों से युक्त हो।। 5।।

ओं सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। 6।।

यजु०।। अ० 34। 6।।

अर्थ—जैसे अच्छा सारथि घोड़ों को लगाम लगाकर नियम में रखता है, उसी प्रकार वश में किया हुआ यह मन मनुष्यों को अभीष्ट स्थान पर ले जाता है। जो मन हृदयस्थ है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता, जो सबसे तीव्र गति वाला है, वह मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो।। 6।।

चार वर्ण

(1) ब्राह्मण

अध्यापनमध्ययनं, यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहञ्चैव, ब्राह्मणानामकल्पयत्।।

मनु०।। 1। 88।।

अर्थ—पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना तथा लेना ब्राह्मण के कर्म हैं। परन्तु दान लेने की अपेक्षा पढ़ाकर और यज्ञ कराकर आजीविका करनी उत्तम है।

(2) क्षत्रिय

प्रजानां रक्षणं दान-
मिज्याऽध्ययनमेव च।

विषयेष्वप्रसक्तिश्च,
क्षत्रियस्य समासतः।।

मनु०।। 1। 89।।

अर्थ—पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, प्रजा पालन, विषयों में आसक्त न होना, ये क्षत्रियों के कर्म हैं।

(3) वैश्य

पशूनां रक्षणं दान-
मिज्याऽध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च,
वैश्यस्य कृषिमेव च।।

मनु०।। 1। 90।।

अर्थ—पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, पशु-पालन, व्यापार करना, ब्याज (सूद) लेना और खेती करना, ये वैश्य के कर्म हैं।

(4) शूद्र

एकमेव हि शूद्रस्य, प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां, शुश्रूषामनसूयया।।

मनु०।। 1। 91।।

अर्थ —परमेश्वर ने शूद्रों के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना—यही कर्म करने की आज्ञा दी है।

चार आश्रम

मनुष्य-जीवन अधिक से अधिक उपयोगी और शुद्ध बन सके, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसको चार-विभागों में विभक्त किया गया है।

1. ब्रह्मचर्याश्रम—आत्मिक और शारीरिक उन्नति मनुष्य को अपने जीवन के पहले भाग में, जिसकी न्यून से न्यून अवधि 25 वर्ष है, करनी चाहिए। यही आश्रम है, जिसमें विद्याध्ययन करके ब्रह्मचर्य के नियमों का पूर्णरीति से पालन करते हुए समस्त आभ्यन्तर और बाह्य करणों को पुष्ट बनाया जाता है और आत्मबल का संचय किया जाता है।

2. गृहस्थाश्रम—जीवन के दूसरे भाग का नाम है। इसमें मनुष्य को मर्यादा के साथ विवाह करके सन्तान उत्पन्न करनी चाहिए और धर्मपूर्वक उपयोगी उद्यम करके धन-संचय करना चाहिए।

3. वानप्रस्थ **4. संन्यास**

तीसरा वानप्रस्थ और चौथा संन्यास आश्रम है। मनुष्य को 25 वर्ष गृहस्थ-जीवन व्यतीत करके समस्त गृह और गृह की सम्पत्ति अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंपकर, गृहस्थाश्रम से मुक्त होकर 51वें वर्ष में वानप्रस्थाश्रम में चले जाना चाहिए।

इस आश्रम में आकर उसे तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए अपनी आवश्यकताओं को न्यून से न्यून करके जनता की सेवा करनी चाहिए। इस आश्रम के लोग बिना लम्बा-चौड़ा वेतन लिए, निःशुल्क अध्यापक आदि सभी व्यवसायों (पेशों) की शिक्षा देने वाले बना करते थे और अब भी बन सकते हैं। इसके पश्चात् चौथे आश्रम में प्रवेश करके जीवन के अन्तिम भाग को अभ्यास, स्वाध्याय और जनता को उपदेश देने आदि श्रेष्ठ कार्यों में व्यतीत करना चाहिए।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः। कठ० उ० 1.27
धन से मनुष्य की तृप्ति नहीं हो सकती।

आर्यसमाज

'आर्य' शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ व अच्छा, धर्मात्मा, कर्तव्यपरायण, शान्तचित्त, उदारचरित, न्यायमार्गावलम्बी और 'समाज' का अर्थ है सभा व संघ जिसमें लोग प्रगतिशील हों और सब दुर्गुणों तथा कुप्रथाओं का निराकरण करने वाले हों। इसलिए 'आर्यसमाज' का अर्थ हुआ अच्छे पुरुषों की सभा।

'आर्यसमाज' को महर्षि दयानन्द ने 7 अप्रैल, 1875 ई०, अर्थात् चैत्र सुदी 1, सं० 1932 वि० को बम्बई में स्थापित किया था। इसके पश्चात् भारत के प्रत्येक बड़े नगर और ग्राम में समाज खुल गए। इस समय आर्यसमाजों की संख्या हजारों में है।

आर्यसमाज के नियम

(1) सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

(2) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान,

न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करने योग्य है।

(3) वेद सब विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(4) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

(5) सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचारकर करने चाहिए।

(6) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(7) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए।

(8) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

(9) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(10) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

आर्यसमाज के उपनियम

1—इसका नाम 'आर्यसमाज' है।

2—इस समाज के उद्देश्य वे ही हैं, जो इसके नियमों में वर्णन किए गए हैं।

3—जो लोग आर्यसमाज में नाम लिखाना चाहें और समाज के उद्देश्य के अनुकूल आचरण स्वीकार करें वे आर्यसमाज में प्रविष्ट हो सकते हैं। परन्तु उनकी आयु अठारह वर्ष से न्यून न हो।

4—जो लोग आर्यसमाज में प्रविष्ट होंगे, वे आर्य कहलायेंगे।

5—जो आर्यसमाज के उद्देश्य के विरुद्ध काम करेगा,

वह न तो आर्य और न आर्य-सभासद् गिना जायेगा।

6—यह सभा प्रत्येक सप्ताह में न्यून से न्यून एक बार हुआ करेगी।

7—समाज के सब कार्यों के प्रबन्ध के लिए एक अन्तरंग सभा नियुक्त की जायेगी और इसमें तीन प्रकार के सभासद् होंगे। अर्थात्—

(क) प्रतिनिधि, (ख) प्रतिष्ठित और (ग) अधिकारी।

8—अधिकारी छः प्रकार के होंगे—

(क) प्रधान, (ख) उपप्रधान, (ग) मंत्री, (घ) उपमंत्री, (ङ) कोषाध्यक्ष और (च) पुस्तकाध्यक्ष।

9—सब आर्यों और सभासदों को संस्कृत व आर्यभाषा (हिन्दी) अवश्य जाननी चाहिए।

10—सब आर्यों और आर्य-सभासदों को उचित है कि उत्सवों पर समाज को दान दें।

11—सब आर्यों और आर्य-सभासदों को उचित है कि सुख और दुःख दोनों में परस्पर सहायता किया करें।

12—चुनाव वर्ष पीछे हुआ करेगा। पुराना अधिकारी

फिर नियत हो सकेगा। स्थान रिक्त होने पर अन्तरंग सभा स्वयं चुन सकती है।

13—विशेष कार्य के लिए उपसभाएं बनाई जा सकती हैं।

14—अन्तरंग सभा मास में दो बार हो।

15—एक तिहाई सभासद् सभा कर लें।

सत्संग के नियम व कार्यक्रम

1—सत्संग पूर्णिमा, अमावस्या और दोनों पक्षों की अष्टमी तिथियों को अथवा किसी सातवें दिन की प्रातः हुआ करे।

2—पहले सब मिलकर संध्या तथा अन्य वेदमन्त्र उच्चस्वर से मिलकर पढ़ें।

3—फिर ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना-उपासना के मन्त्र हों।*

***प्रार्थना व उपासना के मन्त्र शान्त स्वर से पढ़ करके एक व्यक्ति प्रार्थना करे, फिर स्वस्तिवाचन शांति पाठ पढ़कर हवन पूरा कर भजन-गान करें।**

4—फिर स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, हवन यज्ञ हो।

5—तत्पश्चात् वेद तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों का पाठ हुआ करे।

6—पुनः उपदेश हो।

7—भजन तथा ऋग्वेद के अन्तिम (एकता के) सूक्त के मन्त्रों का पाठ हो।

आर्यसमाज के सिद्धांत

ईश्वर

(1) ईश्वर एक है, कई ईश्वर नहीं हैं।

(2) ईश्वर निराकार है। उसको आंख से नहीं देख सकते और न उसकी मूर्ति बना सकते हैं।

(3) ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। वह सब कुछ जानता है और छोटी सी छोटी वस्तु के भी भीतर और बाहर विद्यमान है।

(4) ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, अर्थात् वह अपने किसी

काम के करने के लिए आंख, कान, नाक आदि शरीर व अन्य किसी उपकरण (औज़ार) की आवश्यकता नहीं रखता। जो कुछ करता है, बिना किसी व्यक्ति व वस्तु की सहायता के करता है।

(5) ईश्वर अजन्मा और निर्विकार है। वह मनुष्य के समान जन्म-मरण में नहीं आता। अवतार भी नहीं लेता। राम, कृष्ण आदि ईश्वर के अवतार नहीं थे, धर्मात्मा पुरुष थे, इसीलिए उनके अच्छे कामों को स्मरण करना चाहिए परन्तु उनकी मूर्तियों को ईश्वर समझकर नहीं पूजना चाहिए।

जीव

(1) जीव चेतन है। इसकी संख्या अनन्त है।

(2) जीव न कभी मरता है, न उत्पन्न होता है; अर्थात् कभी ऐसा समय नहीं हुआ जब जीव न रहा हो और न ऐसा समय होगा जब जीव न रहेगा।

(3) जीव में ज्ञान तो है, पर थोड़ा। और शक्ति भी

थोड़ी है, इसलिए जीव को अल्पज्ञ कहते हैं।

(4) जीव शरीर धारण करता है। कभी मनुष्य का, कभी पशु का, कभी कीड़े आदि का।

(5) जीव जैसा कर्म करता है, उसको उसके फल के अनुसार वैसा ही शरीर मिलता है। बुरे काम के लिए बुरी योनि और अच्छे कर्म के लिए अच्छी योनि मिलती है। इसी को जीव-अवतार कहते हैं। अवतार जीव का होता है; ईश्वर का नहीं।

(6) जीव जब अच्छे कर्म करते-करते सबसे ऊंची अवस्था तक पहुंच जाता है तो मोक्ष मिल जाता है; अर्थात् शरीर नहीं रहता और वह स्वतन्त्र विचरता हुआ ईश्वर के आनन्द में मग्न रहता है।

(7) मोक्ष 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष के लिए होता है। इसके पश्चात् जीव मोक्ष से लौटता है और उत्तम ऋषियों का शरीर धारण करता है। इस शरीर में यदि अच्छे काम करता है तो फिर मुक्त हो जाता है, और यदि बुरे कर्म करता है तो नीचे की योनियों का चक्र आरम्भ हो जाता है।

प्रकृति

(1) प्रकृति सत्, रजस्, तमस् की साम्य अवस्था और छोटे-छोटे परमाणुओं का नाम है।

(2) ये परमाणु जड़ हैं। इनमें ज्ञान नहीं।

(3) ये परमाणु अनादि और अनन्त हैं, अर्थात् न कभी उत्पन्न हुए न नष्ट होंगे।

(4) ईश्वर इन्हीं परमाणुओं को जोड़कर सृष्टि बनाता है। आग, पानी, वायु और पृथ्वी—ये इन्हीं परमाणुओं के संयोग का फल हैं। सूर्य, चन्द्र आदि इन्हीं से बने हैं। हमारे शरीर भी इन्हीं परमाणुओं से बने हैं।

(5) जब परमाणु अलग-अलग हो जाते हैं तो इसको 'प्रलय अथवा ब्रह्मरात्रि' कहते हैं। जब सृष्टि बनी रहती है तो 'ब्रह्मदिन' होता है।

वेद

(1) वेद चार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

मोक्ष की प्राप्ति के लिए जिन चार साधनों की आवश्यकता है, वे इन चार वेदों में बताए गए हैं, अर्थात् ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान। चारों वेदों में लगभग बीस सहस्र चार सौ मंत्र और लगभग सात लाख अड़सठ सहस्र शब्द हैं।

ऋग्वेद सबसे बड़ा है। इसमें दस मण्डल हैं और इन मण्डलों में **1028** सूक्त हैं, जिनमें **10552** ऋचाएं हैं।

यजुर्वेद में **40** अध्याय और **1976** मंत्र हैं।

सामवेद में **1875** सामसंत्र हैं।

अथर्ववेद में **20** काण्ड हैं, जिनमें **760** सूक्त और **5977** मंत्र, लगभग **6000** ऋचाएं हैं।

(2) वेदों का ज्ञान ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों को दिया। अर्थात् –

अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः । शत० ।। 11। 4। 2। 3।।

अथर्वाङ्गिरसो मुखम्० । अथर्व० ।। 10। 7। 20।।

अग्नि ऋषि को ऋग्वेद, वायु को यजुर्वेद, आदित्य को

सामवेद और अंगिरा को अथर्ववेद।

(3) इन ऋषियों ने वेदों का अन्य ऋषियों और मनुष्यों को उपदेश दिया। संसार-भर की सब विद्याएं वेदों से ही निकली हैं।

(4) वेद स्वतः प्रमाण हैं। परन्तु अन्य पुस्तकें परतः प्रमाण, अर्थात् जो बात उनमें वेद के अनुकूल है; वह ठीक है, जो वेद-विरुद्ध है, वह ठीक नहीं।

(5) वेद लौकिक संस्कृत भाषा में नहीं हैं किंतु देववाणी में हैं। संस्कृत भाषा वेदों की भाषा से निकली है और अन्य सब भाषाएं संस्कृत से।

(6) वेदों में इतिहास नहीं है। वेदों में यौगिक शब्द हैं, रूढ़ि नहीं। अर्थात् वेदों में ऐसे शब्द आए हैं, जो हमको मनुष्यों के नामों जैसे ज्ञात होते हैं। परन्तु उनके गुणवाचक अर्थ हैं, व्यक्तिवाचक नहीं ; वे मनुष्य न थे।

(7) वेदों में राम, कृष्ण आदि कल्पित अवतारों का वर्णन नहीं है।

(8) वेदों में मुख्य तीन बातें हैं—ईश्वर के लिए

भिन्न-भिन्न अवसरों के अनुकूल प्रार्थनाएं, सृष्टि के नियम और मनुष्यों को उपदेश।

(9) वेदों में इंद्र, अग्नि, वरुण आदि शब्द कहीं ईश्वर के लिए आए हैं और कहीं भौतिक पदार्थों जैसे आग, पानी आदि के लिए। इसका पता प्रकरण तथा संगति से लग सकता है।

(10) पहले संसार-भर में वेद-मत ही था। पीछे भिन्न-भिन्न मत हो गए।

अन्य शास्त्र

आर्यसमाज वेदों को तो ईश्वरकृत मानता है परन्तु इसके अतिरिक्त नीचे लिखे ऋषियों के ग्रंथों को भी उस अंश तक प्रामाणिक मानता है, जिस अंश तक वे वेदों के अनुकूल हैं :

ब्राह्मण ग्रंथ

आदि-सृष्टि से लेकर समय-समय पर वेदों की व्याख्या महर्षि-मुनि करते चले आए हैं। उन सब व्याख्याओं का

संग्रह लगभग महाभारत के समय में हुआ है। जिन ग्रंथों में यह संग्रह हुआ है, उन्हीं को ब्राह्मण-ग्रंथ कहते हैं। ये गणना में तो बहुत हैं, परन्तु इस समय कुछ ही मिलते हैं।

वेदों के अंग

ये छः हैं—1. शिक्षा, 2. कल्प, 3. निरुक्त, 4. व्याकरण, 5. ज्योतिष, 6. छन्द। वेदों के जानने के लिए इनका जानना आवश्यक है।

शिक्षाएं—पाणिनीय, माण्डूकी आदि कोई 60 शिक्षाएं आजकल मिलती हैं।

कल्पों के नाम सूत्रग्रंथों में देखो। व्याकरण में प्रातिशाख्य (अर्थात् वैदिक) व्याकरण ग्रंथ, अष्टाध्यायी और महाभाष्य मिलते हैं।

निरुक्त—पहले अनेक 'निरुक्त' ग्रंथ थे परन्तु अब केवल यास्काचार्य का ही मिलता है। वेद के अर्थ करने में यह परमोपयोगी ग्रन्थ है।

ज्योतिष में—'सूर्यसिद्धांत' मुख्य ग्रन्थ मिलता है।

वेदों के उपांग

वेदों के छः उपांग हैं, जिनको छः 'दर्शन' अथवा छः 'शास्त्र' भी कहते हैं। इनके नाम ये हैं—1. कपिल का 'सांख्य', 2. वात्स्यायन-भाष्य-सहित गौतम का 'न्याय', 3. व्यास-भाष्यसहित पतञ्जलि का 'योग', 4. प्रशस्तपाद भाष्यसहित कणाद का 'वैशेषिक', 5. व्यास का 'वेदान्त' और 6. जैमिनी का 'मीमांसा' दर्शन।

वेदों की शाखाएं

चार वेदों की 1131 शाखाएं इस प्रकार हैं—ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000, अथर्ववेद की 9। इन शाखाओं में वेदों की व्याख्या की गई है।

उपनिषद्

जिनमें हमें ब्रह्मविद्या की प्राप्ति होती है, उन्हें 'उपनिषद्' कहते हैं। साधारण रीति से ग्यारह उपनिषदें ही प्रामाणिक समझी जाती हैं। उनके नाम ये हैं—1. ईश, 2. केन, 3. कठ, 4. प्रश्न, 5. मुण्डक, 6. माडूक्य, 7. ऐतरेय,

8. तैत्तिरीय, 9. छान्दोग्य, 10. बृहदारण्यक और 11 श्वेताश्वतर।

स्मृति-ग्रंथ

सब मिलाकर 80 स्मृतियां हैं। मानव धर्मशास्त्र मनुस्मृति इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध है। केवल वेदानुकूल स्मृतिवचन ही मानवीय हैं, अन्य नहीं।

सूत्र-ग्रंथ

गृह्यसूत्र—1. गोभिल-गृह्यसूत्र, 2. पारस्कर-गृह्यसूत्र, 3. आश्वलायन-गृह्यसूत्र आदि।

आर्यभाषा भाष्य-ग्रंथ

स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ—सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका, आदि।

पञ्च यज्ञ

पांच यज्ञ प्रत्येक आर्य को प्रतिदिन करने चाहिए—

(1) ब्रह्मयज्ञ अर्थात् ईश्वर-पूजा और वेद-पाठ।

(2) देवयज्ञ अर्थात् हवन।

(3) भूतयज्ञ अर्थात् गाय, कुत्ते आदि आश्रित जीवों को भोजन।

(4) पितृयज्ञ अर्थात् जीवित माता-पिता का सत्कार। मरे हुए माता-पिता का सत्कार करना असम्भव है, इसलिए मृतकों का श्राद्ध, तर्पण नहीं करना चाहिए।

(5) अतिथियज्ञ अर्थात् साधु-संन्यासी आदि आए हुए का सत्कार करना।

संस्कार

प्रत्येक आर्य के सोलह संस्कार होने चाहिए—

तीन जन्म काल से पहले—(1) गर्भाधान, (2) पुंसवन, (3) सीमन्तोन्नयन। छः बचपन में—(1) जातकर्म, (2) नामकरण, (3) निष्क्रमण, (4) अन्नप्राशन, (5) मुण्डन, (6) कर्णवेध। दो विद्या पढ़ना आरंभ करने के समय—(1) यज्ञोपवीत, (2) वेदारम्भ। दो विद्या समाप्त करने पर— (1) समावर्तन (2) विवाह। तीन पिछली अवस्था में—(1) वानप्रस्थ, (2) संन्यास, (3) अन्त्येष्टि।

विवाह

(1) लड़की का विवाह न्यून से न्यून 19 वर्ष की अवस्था में और लड़के का 25 वर्ष की अवस्था में करना चाहिए।

(2) एक पुरुष एक स्त्री से विवाह कर सकता है।

(3) अक्षतयोनि विधवा अथवा बाल-विधवा का अक्षतवीर्य पुरुष के साथ विवाह ठीक है।

(4) क्षतयोनि विधवा का क्षतवीर्य पुरुष के साथ नियोग हो सकता है, यदि आवश्यकता हो तो।

आर्यसमाज का संगठन

(1) न्यून से न्यून 10 सभासदों का एक समाज होता है।

(2) प्रत्येक सभासद् को अपनी आय का शतांश (100वां भाग) चन्दे में देना पड़ता है।

(3) शतांश चन्दा न देनेवाले तथा सदाचार से न

रहनेवाले सभासदों से पृथक् किए जाते हैं।

(4) प्रांत के समाजों को संगठित करने के लिए प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाएं हैं, जिनमें प्रत्येक समाज के प्रतिनिधि जाते हैं। समाज के 10 सभासदों के लिए एक प्रतिनिधि, इसके पश्चात् 20 सभासदों के लिए एक प्रतिनिधि। ये प्रतिनिधि तीन वर्ष के लिए निर्वाचित किए जाते हैं।

(5) प्रतिनिधि भेजनेवाले समाज को नियमपूर्वक प्रतिनिधि-सभा को समाज के सभासदों के वार्षिक शुल्क का दशांश भेजना चाहिए।

(6) प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा के प्रबन्ध के लिए एक अन्तरंग सभा होती है।

(7) प्रतिनिधि सभाओं के चुने हुए सभासदों की 'सार्वदेशिक सभा' है जिसका मुख्य कार्यालय दिल्ली में है।

आर्यजीवन की प्राप्ति के लिए कुछ नियम

(1) अपने जीवन का एक लक्ष्य बनाकर अपनी सारी शक्ति उसकी प्राप्ति में लगा देना।

(2) समय का सदुपयोग करना, व्यर्थ न खोना।

(3) तप का जीवन व्यतीत करना, आलस्य और प्रमाद को निकट न आने देना।

(4) आत्मविश्वासी होना, अपनी आत्मा पर भरोसा करना।

(5) सदैव आशावादी बने रहना, भूलकर भी आशा का त्याग न करना।

(6) स्वाध्याय का भी त्याग न करना। सर्वदा सत्शास्त्रों का पढ़ना और अपने जीवन पर दृष्टि रखना अति आवश्यक है।

(7) नित्यप्रति संध्या के पश्चात् ईश्वर से बल, बुद्धि भक्ति की याचना करना।

आर्य समाज का विस्तार

1. विश्व में इस समय लगभग 8 हज़ार आर्य समाज हैं। इसकी प्रान्तीय सभाओं की संख्या 21 है।

2. आर्य समाज की विचारधारा से प्रभावित लोगों की संख्या दस करोड़ व समाज के सदस्यों की संख्या 5 लाख है।

3. भारत से बाहर दक्षिण तथा पूर्वी अफ्रीका, फिजी, ट्रिनीडाड, दारुसलम, मारीशस, गायना, डचगायना, सिंगापुर, बर्मा, बैंकाक, हालैंण्ड, कनाडा, न्यूयार्क, सूरीनाम तथा नेपाल आदि में लगभग 2000 आर्य समाज, लगभग 50 आर्यवीरदल की शाखाएं तथा 10 प्रान्तीय सभाएं कार्यरत हैं।

4. संपूर्ण विश्व में इस समय 50 प्रतिनिधि सभायें तथा 200 ज़िला सभायें हैं। जिनमें सर्वोच्च सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा है। इसका कार्यालय रामलीला मैदान, नई दिल्ली में है।

5. इस समय आर्य समाज के महर्षि दयानन्द उपदेशक विद्यालय, टंकारा सहित पांच उपदेशक विद्यालय चल रहे हैं जिनमें दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा) प्रमुख हैं।

6. आर्य समाज की ओर से चलने वाले पोस्ट ग्रेजुएट

कॉलेजों की संख्या 500 है जिनमें लगभग 5 लाख छात्र शिक्षा प्राप्त करते हैं। हाई स्कूलों की संख्या 1200 है व प्राईमरी स्कूलों की संख्या 1500 है।

7. आर्य समाज के पुस्तक-विक्रेताओं की संख्या 55 है। आर्य समाज के इस समय लगभग 25 कन्या गुरुकुल व लगभग 100 कन्या महाविद्यालय सक्रिय हैं। अनुमानतः 125 पुत्रियां पाठशालाओं में काम कर रही है।

8. बालक और बालिकाओं के 65 गुरुकुल और अनेक संस्कृत पाठशालाएं हैं। जिनमें लगभग 10 हजार छात्र शिक्षा प्राप्त करते हैं।

9. अनुसूचित जाति और जनजातियों के उत्थान हेतु रात्रि शिक्षा पाठशालाएं चल रही हैं।

10. लगभग चार विश्वविद्यालयों में दयानन्द पीठ की रचना हो चुकी है तथा आर्य समाज से संबंधित विषयों पर 450 व्यक्ति पी.एच.डी. कर चुके हैं।

11. इसके अन्तर्गत लगभग 20 गोशालाएं, 10 अनाथालय, 25 विधवाश्रम 500 के लगभग अतिथि भवन और

व्यायामशालाएं हैं।

12. सब मिलाकर लगभग 500 आर्यकुमार और आर्ययुवक सभाएं हैं।

13. आर्य समाज प्रचार पर प्रतिवर्ष डेढ़ करोड़ व शिक्षा पर प्रतिवर्ष 15 अरब रुपया खर्च करता है।

14. प्रेस, पत्र-पत्रिकाएं, पुस्तकालय और वाचनालय लगभग 500 हैं।

15. उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, केरल, असम, नागालैण्ड, मिज़ोरम, त्रिपुरा आदि में लगभग 50 दयानन्द सेवाश्रमों द्वारा—लघु उद्योग, कुटीर उद्योग, गोशाला, कृषि अनुसंधान तथा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के उत्थान का महान प्रयत्न किया जा रहा है।

16. आर्य समाज के पास इस समय 1500 वैतनिक तथा 2000 अवैतनिक उपदेशक हैं।

17. आर्य समाज की ओर से निकलने वाले मासिक व साप्ताहिक समाचारपत्रों की संख्या 120 है।

ऋषि दयानन्द-कृत ग्रंथ

आर्य स्त्री-पुरुषों को स्वाध्याय के लिए, वेदों के पश्चात् सबसे उच्च पदवी ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को देनी चाहिए और प्रयत्न करना चाहिए कि ऋषि के ग्रन्थ उन्हीं की भाषा में पढ़े जाएं। इन्हीं ग्रंथों का प्रचार कर अन्य पुस्तकों को दूसरी कोटि में रखें।

1. आर्याभिविनय—(सं० 1932) ऋग्वेद और यजुर्वेद के 108 मन्त्रों की अत्यन्त सुन्दर व्याख्या है। इसी ढंग पर स्वामीजी स्वयं प्रार्थना करते थे।

2. सत्यार्थप्रकाश—(आर्यभाषा) सत्यार्थप्रकाश स्वामीजी का सं० 1932 का छपवाया हुआ सबसे पहला बड़ा ग्रन्थ है। पहले संस्करण में अनेक कारणों से कई भूलें रह गई थीं। संवत् 1939 में इसका फिर संशोधन करके स्वामीजी ने छपवाया था। इस ग्रन्थ ने समस्त भारत के धार्मिक जगत् में हलचल मचा दी है। इस पुस्तक को पढ़कर जहां मनुष्य को अपने धर्म का वास्तविक ज्ञान हो जाता है, वहां संसार

के अन्य मत-मतान्तरों का भी बोध हो जाता है। यह एक अद्वितीय पुस्तक है। इसके पाठ से किसी को भी, चाहे वह किसी भी धर्म का माननेवाला क्यों न हो, वंचित नहीं रहना चाहिए।

सत्यार्थप्रकाश के पढ़ने की रीति

संस्कृत जानने वाले विद्वान् जैसे चाहें पढ़कर प्रत्येक बात समझ सकते हैं। अन्य साधारण भाषा जाननेवाले इसे पहले इस प्रकार पढ़ें—

(1) भूमिका, (2) दूसरा समुल्लास, (3) दसवां, (4) ग्यारहवां, (5) चौथा, (6) पांचवां, (7) छठा, (8) तेरहवां, (9) चौदहवां, (10) तीसरा, (11) सातवां, (12) आठवां, (13) बारहवां, (14) नवां और तब पहला समुल्लास पढ़ें। ग्रन्थ को बार-बार पढ़ना चाहिए। स्वर्गीय पं० गुरुदत्तजी कहा करते थे कि मैंने इसे 18 बार पढ़ा है; और जब भी पढ़ता हूं, तब ही नई-नई बातें ज्ञात होती हैं।

3. काशी-शास्त्रार्थ—(सं० 1926 वि०)

4. सत्यधर्म-विचार—(सं० 1937 वि०)

5. पंचमहायज्ञ-विधि—(सं० 1934 वि०)

6. आर्योद्देश्य-रत्नमाला—(सं० 1934 वि०)

7. संस्कार-विधि—(सं० 1932 वि०)

यह ग्रन्थ पहले-पहल ऋषि ने बम्बई में छपवाया था। फिर सं० 1940 में इसका संशोधन किया गया। इसमें मनुष्य-जीवन का समय-विभाग (प्रोग्राम) लिखा है और बतलाया गया है कि सोलह संस्कारों के करने ही से मनुष्य सम्पूर्ण मनुष्य बन सकता है।

8. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—(सं० 1933 वि०) यह चारों वेदों के भाष्य की भूमिका है।

9. ऋग्वेद-भाष्य—(सं० 1934-40 वि०)

10 यजुर्वेदभाष्य—(सं० 1934-39 वि०)

11. यजुर्वेदभाषाभाष्य—(सं० 1934-39 वि०)

12. व्यवहारभानु—(सं० 1936 वि०)

13. वेदविरुद्धमतखण्डन—(सं० 1931 वि०)

14. नारायणस्वामीमतखण्डन—(सं० 1931 वि०)

15. भ्रमोच्छेदन—(सं० 1937 वि०)

16. **भ्रान्तिनिवारण**—(सं० 1934 वि०)
17. **गोकरुणानिधि**—(सं० 1937 वि०)
18. **वेदांग-प्रकाश**—(सं० 1936-39 वि०)
19. **विवाह-पद्धति**
20. **संस्कृत वाक्य-प्रबोध**—(सं० 1936 वि०)
21. **वेदभाष्य का नमूना**—(सं० 1932-33 वि०)
22. **अष्टाध्यायी-भाष्य**—(सं० 1934 वि०)
23. **प्रतिमा-पूजन-विचार**—(सं० 1930 वि०)
24. **वेदान्त-ध्वान्ति-निवारण**—(सं० 1931 वि०)
25. **स्वमन्तव्यामन्तव्य-प्रकाश**—(सं० 1939 वि०)

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। शत० 1.7.1.5
यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है।

सोलह संस्कार और उनका समय

वैदिक संस्कारों को करने से माता-पिता जैसी उत्तम सन्तान बनाना चाहें, बना सकते हैं। समर्थ गुरु रामदास तथा शिवाजी की माता ने ही शिवाजी को इतना शूरवीर बनाया था। नेपोलियन को भी इतना वीर, धीर, गम्भीर और संसार-विजेता उसकी माता ने ही बनाया था। एडीसन को विज्ञानवेत्ता उसकी माता ने ही बनाया था। अभिमन्यु और लव-कुश को युद्ध-विद्या, शस्त्र-प्रयोग गर्भ में ही सिखाए गए थे।

1. गर्भाधान—श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करने के लिए यह संस्कार किया जाता है। युवा स्त्री-पुरुष को उत्तम सन्तान की इच्छा हो तो विशेष तत्परता से प्रसन्नतापूर्वक गर्भाधान करें, नहीं तो सन्तान कभी उत्तम उत्पन्न न होगी। गर्भाधान का समय रजोदर्शन के दिन से सोलहवीं रात्रि तक है। उनमें प्रथम चार रात्रि तथा पर्व-रात्रि वर्जित हैं।

2. पुंसवन-संस्कार—जब गर्भ की स्थिति का ज्ञान हो

जाए, तब दूसरे व तीसरे महीने गर्भ की रक्षा के लिए यह संस्कार किया जाता है। इसमें दोनों स्त्री-पुरुष प्रतिज्ञा करते हैं कि वे आज से कोई ऐसा कार्य न करेंगे, जिससे गर्भ गिरने का भय हो।

3. सीमन्तोन्नयन—यह संस्कार गर्भ के चौथे मास में बच्चे की मानसिक शक्तियों की वृद्धि के लिए किया जाता है। इसमें ऐसे साधन किए जाते हैं, जिनसे स्त्री का मन सन्तुष्ट रहे।

4. जातकर्म—यह संस्कार बालक के जन्म लेते ही किया जाता है। बालक का पिता उसकी जिह्वा पर सोने की सलाई के द्वारा घी और शहद से 'ओ३म्' लिखता है और उसके कान में 'त्वं वेदोऽसि' कहता है।

5. नामकरण—जन्म से ग्यारहवें दिन अथवा 101वें दिन व दूसरे वर्ष के आरम्भ में यह संस्कार किया जाता है। इसमें बालक का नाम रखा जाता है । नाम प्रिय तथा सार्थक रखना चाहिए।

6. निष्क्रमण—यह संस्कार जन्म के चौथे महीने में

उसी तिथि में, जिसमें बालक का जन्म हुआ हो, किया जाता है। इसका उद्देश्य बालक को उद्यान की शुद्ध वायु का सेवन और सृष्टि के अवलोकन का प्रथम शिक्षण है।

7. अन्नप्राशन—छठे व आठवें महीने में जब बालक की शक्ति अन्न पचाने की हो जाये, तो यह संस्कार किया जाता है।

8. चूड़ाकर्म—(मुण्डन-संस्कार)—यह पहले अथवा तीसरे वर्ष में बालक के बाल काटने के लिए किया जाता है।

9. कर्णवेध—कई रोगों को दूर करने के लिए बालक के कान बींधे जाते हैं। यह संस्कार तीसरे या पांचवें वर्ष में करना चाहिए।

10. उपनयन—जन्म-वर्ष से 8वें वर्ष में ब्राह्मण, 11वें वर्ष में क्षत्रिय, 12वें वर्ष में वैश्य के लड़के व लड़की को इस संस्कार के द्वारा यज्ञोपवीत पहनाया जाता है।

यज्ञोपवीत का मन्त्र

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं
प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।

आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं,
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।।
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा
यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।

11. वेदारम्भ—उपनयन संस्कार के दिन व उस से एक वर्ष के भीतर गुरुकुल में वेदों का आरम्भ गायत्री मन्त्र से किया जाता है।

12. समावर्तन—जब ब्रह्मचारी व्रत की समाप्ति कर वेद-शास्त्रों के पढ़ने के पश्चात् गुरुकुल को छोड़कर अपने घर जाता है, उस समय यह संस्कार किया जाता है।

13. विवाह—विद्या समाप्ति के पश्चात् जब लड़की-लड़का घर जाएं तो यह संस्कार किया जाता है। सब प्रकार से योग्य लड़के-लड़की का ही विवाह करना चाहिए।

14. वानप्रस्थ—इसका समय 50 वर्ष के उपरान्त है। जब घर में पुत्र का भी पुत्र (पोता) हो जाए, तब गृहस्थ के धन्धों में फंसे रहना अधर्म है। उस समय यह संस्कार किया जाता है।

15. संन्यास—वानप्रस्थी वन में रहकर जब सब इन्द्रियों को जीत ले, किसी में मोह और शोक न रहे, तब केवल परोपकार हेतु संन्यास-आश्रम में प्रवेश के लिए यह संस्कार किया जाता है।

16. अन्त्येष्टि-संस्कार—मनुष्य-शरीर का यह अन्तिम संस्कार है जो मरने के पश्चात् शरीर को जलाकर किया जाता है।

आर्यों के यज्ञ तथा पर्व

पर्व का नाम	समय
1. ब्रह्मयज्ञ	प्रति दिन सायं-प्रातः
2. देवयज्ञ	,, ,, ,, ,,
3. बलिवैश्वदेव-यज्ञ	,, ,, ,, ,,
4. पितृ यज्ञ	,, ,, ,, ,,
5. अतिथि यज्ञ	,, ,, ,, ,,
6. दर्शेष्टि (कृष्ण-पाक्षिक यज्ञ)	प्रति अमावस्या
7. पौर्णमास्येष्टि (शुक्ल-पाक्षिक यज्ञ)	प्रति पूर्णमासी

8. संवत्सरेष्टि (नये वर्ष का यज्ञ) चैत्रशुक्ल 1—प्रतिपदा
9. दयानन्द महायज्ञ (आर्यसमाज का स्थापना दिवस) चैत्रशुक्ल 1
10. वैशाखी (सौर वर्ष का आरम्भिक दिन) प्रथम वैशाख
11. रामनवमी (राम का जन्म-दिन) चैत्रशुदि 9
12. वसन्त नवान्नेष्टि (नये अन्न का यज्ञ) वैशाख—मीन, मेष के सूर्य में
13. वरुण, प्रघास चातुर्मास्येष्टि आषाढ
14. श्रावणी श्रावण-पूर्णमासी
15. श्रावण-कर्मयज्ञ (रक्षाबन्धन) श्रावण-पूर्णमासी
16. कृष्णाष्टमी (कृष्ण जन्म-दिन) भाद्रपद कृष्ण 8
17. विरजानन्द उत्सव आश्विन कृष्ण
18. विजयादशमी (दशहरा) आश्विन शुक्ल 10
19. शारद नवान्नेष्टि—नये अन्न का यज्ञ कार्तिक—कन्या, तुला के सूर्य में।
20. दयानन्दोत्सव (दीपावली) कार्तिक अमावस्या
21. साकमेध-चातुर्मास्येष्टि कार्तिक पूर्णमासी

22. उत्सर्गकर्म (यज्ञ)	पौष रोहिणी नक्षत्र
23. लोहड़ी	पौष मासांत
24. मकर संक्रांति (माघी)	प्रथम माघ
25. वसन्त पंचमी (हकीकत-बलिदान)	माघशुक्ल 5
26. दयानन्द-बोधोत्सव (शिवरात्रि)	फाल्गुन कृष्ण 14
27. वीर-उत्सव (लेखराम-बलिदान)	फाल्गुन कृष्ण 3
28. होली	फाल्गुन पूर्णमासी
29. वैश्वदेव चातुर्मास्येष्टि	फाल्गुन पूर्णमासी
30. गुरुदत्त-उत्सव	चैत्र कृष्ण 14
31. श्रद्धानन्द-बलिदान	पौष बदि 14
32. राजपाल-बलिदान	चैत बदि 12

सत्यमेव जयते नानृतम्। मुण्डक० उ० 3.2.4
सत्य की ही जय होती है, झूठ की नहीं।

आर्य पर्व-पद्धति

निम्नलिखित त्योहार और पर्व आर्य-पुरुषों को मनाने चाहिए।

(1) नवसंवत्सरोत्सव

नये वर्ष का यज्ञ, चैत्र शुदि 1 नवसंवत्सरारम्भोत्सव संसार की प्रायः सब सभ्य जातियों में मनाया जाता है। नूतन वर्ष के स्वागतार्थ आर्यजाति में यज्ञादि द्वारा उत्सव मनाने की परिपाटी है।

(2) आर्यसमाज का स्थापना-दिवस

दयामूर्ति ऋषि दयानन्द ने आर्यजाति तथा वैदिक धर्म के पुनरुद्धारार्थ और संसार के उपकारार्थ भारत की प्रसिद्ध नगरी बम्बई में शुभ तिथि चैत्र शुदि 1, संवत 1932 वि० शनिवार तदनुसार 7 अप्रैल, सन् 1875 ई० को प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की। अतः इस तिथि पर सब आर्यसमाजों को उत्सव करने चाहिए। संसार के उपकार और देश-देशान्तरों में वैदिक धर्म के प्रचार के साधनों पर

विचार करके अपने अन्दर नया जीवन धारण करना चाहिए।

(3) रामनवमी (श्रीराम जन्म-दिन)

चैत्र शुदि नवमी

प्राचीन भारत के धर्मप्राण तथा गौरव-सर्वस्व महात्मा श्रीरामचन्द्र जी का आदर्श चरित्र आर्यजाति के लिए अनुकरणीय तथा शिक्षाप्रद है। निष्काम कर्म वैदिक धर्म का सिद्धान्त है और इसका पूर्णरूप से पालन केवल प्रातःस्मरणीय श्रीराम द्वारा ही हुआ है। उन्हीं पवित्र नाम राम के जन्म-दिन की शुभ तिथि चैत्र शुदि नवमी है। इस दिन मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के चरित्र के अध्ययन व स्वाध्याय के लिए बाल्मीकि-रामायण की कथा होनी चाहिए। प्रत्येक आर्य को उनके पथ पर चलने का दृढ़ संकल्प करना चाहिए।

(4) हरितृतीया (वर्षा-ऋतु-उत्सव)

श्रावण शुदि तृतीया

स्थलचर, जलचर तथा नभचर—सभी प्राणियों का जीवन जल पर निर्भर है। वर्षा-ऋतु का शुभागमन होते ही प्रकृति का दृश्य बदल जाता है। चारों ओर हरियावल ही

हरियावल नेत्रों का सत्कार करती है। दादुर-ध्वनि और मयूर की कूक दसों दिशाओं को मुखरित कर देती है। प्रकृति में आनन्द ही आनन्द का एकाधिपत्य व्याप जाता है। ऐसे समय में सहृदय भारतवासी भला कैसे उदासीन रह सकते हैं ? वे भी प्रकृति के मधुर स्वर में अपना स्वर मिलाने के लिए वर्षा-उत्सव मनाते हैं।

(5) श्रावणी उपाकर्म

श्रावण पूर्णमासी

शरीर की स्थिति और उन्नति जिस प्रकार अन्न से होती है, उसी प्रकार सारे शरीर के राजा का मन का उत्कर्ष और शिक्षण स्वाध्याय से होता है। अतएव स्वाध्याय मनुष्य के लिए अन्नाहार के समान ही आवश्यक और अनिवार्य है। प्राचीन काल में वैसे तो लोग नित्य ही वेदपाठ में रत रहते थे, किन्तु वर्षा-ऋतु में वेदपाठ, धर्मोपदेश और ज्ञान-चर्चा का विशेष आयोजन किया जाता था। उसी दिन पहले यज्ञोपवीत बदले जाते थे। इस विशेष वेदोपदेश का प्रारम्भ श्रावण पूर्णिमा या श्रावण शुदि पंचमी को होता था।

(6) श्रीकृष्ण जन्मोत्सव

भाद्रपद बदि अष्टमी

इस समय भारत के शृंखलाबद्ध इतिहास की अप्राप्यता में यदि भारतीय अपना मस्तक समुन्नत जातियों के समक्ष ऊंचा उठाकर चल सकते हैं तो भगवान् कृष्ण की दिव्य वाणी गीता की विराजमानता से। ऐसे अद्वितीय योगीराज का जन्मोत्सव मनाने के लिए किस भारतीय का हृदय उत्सुक न होगा ! वास्तव में कृष्ण भारत की आत्मा थे। उनका जन्म आज से पांच हज़ार वर्ष पूर्व भाद्रपद बदि अष्टमी, बुधवार, रोहिणी नक्षत्र में मथुरा में हुआ था।

(7) विजयादशमी

आश्विन शुदि दशमी

प्रायः देखने में आता है कि विजयादशमी रावण-वध और श्रीरामचन्द्र की लंका-विजय की तिथि समझकर मनाई जाती है, परन्तु वास्तव में उक्त विजय-घटना का इस उत्सव के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। प्राचीनकाल में इसका शुद्ध स्वरूप यह था कि इस दिन राजागण अपनी सहस्रों सेना

सहित सज-धजकर विजय-यात्रा का नियमबद्ध उपक्रम करते थे। वैश्य भी अपने वाहनों में बैठकर इसी प्रकार व्यापार-यात्रा का प्रारम्भसूचक अनुष्ठान करते थे। आजकल इसकी पद्धति यह होनी चाहिए कि बस्ती के बाहर कुछ दूर तक यात्रा की जाए। इस अवसर पर खड्ग का अभ्यास, बाणों से लक्ष्यवेध तथा गतका आदि शस्त्राभ्यास के कौतुकों का प्रदर्शन होना चाहिए। आर्यजाति में इस समय शक्ति-संचय की बड़ी आवश्यकता है।

(8) श्रीमद्दयानन्दोत्सव

दीपावली-कार्तिक अमावस्या

दीपावली के विषय में भी विजयादशमी के समान एक कल्पित गाथा चल पड़ी है कि श्रीरामचन्द्रजी के वनवास से लौटकर आयोध्या में पहुंचने पर उनकी प्रजा ने उस हर्षोत्सव के उपलक्ष्य में आज के दिन दीपावली की थी। वास्तव में बात यह है कि आज के दिन से शीत का शासन आरम्भ होता है। भावी शीत के निवारण के लिए उष्ण वस्त्रों का प्रबन्ध करना होता है, वायुमंडल का संशोधन हवन-यज्ञ से तथा

घर-बार की स्वच्छता लिपाई-पुताई से की जाती है। इसी समय श्रावण की उपज (फसल) का आगमन होता है। इसी फसल के स्वागत के लिए दीपमाला का उत्सव मनाया है; किन्तु इस महारात्रि का महत्त्व एक घटना ने और भी बढ़ा दिया है। इसी दिन सायंकाल विक्रमी सं० 1940 तदनुसार 30 अक्तूबर, सन् 1883 ई० मंगलवार को 19वीं शताब्दि के अद्वितीय वेदोद्धारक और वर्तमान आर्य्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द की उच्च आत्मा ने इस नश्वर शरीर को छोड़ा था। अतः आज के दिन ऋषि के गुणानुवाद गाए जाने चाहिए। उनके पवित्र चरित्र से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इस दिन यथाशक्ति वेद 'प्रचार' के पुण्य-कार्य के लिए दान देना चाहिए।

(9) मकर-संक्रांति

यह पर्व चिरकाल से चला आता रहा है। सभी प्रान्तों में यह एक जैसा मनाया जाता है। इसी दिन शीत अपने यौवन पर होता है। अतः स्थान-स्थान पर हवन-यज्ञ होने चाहिए, तिल के लड्डू बांटे जाएं और अपनी सामर्थ्य के अनुसार कम्बल आदि दीन-दुखियों को दान दिए जाएं।

(10) वसंत पंचमी
माघ शुदि पंचमी

यह समय बहुत सुहावना होता है। सारी प्रकृति ने वसन्ती बाना पहन लिया है। खेतों में, जहां तक दृष्टि दौड़ाएं, हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है। क्या पशु, क्या पक्षी और क्या मनुष्य, सबका हृदय प्रसन्नता से खिलने लगता है। इस समय आमोद-प्रमोद और राग-रंग की सूझती है। इस दिन पीताम्बर (पीले वस्त्र) धारण कर हवन-यज्ञ के पश्चात् वसन्ती मोहनभोग व हलवे का भोजन करें। समूह रूप से सम्मिलित होकर उपवन कुसुमोद्यान में भ्रमण करें तथा बालकों की क्रीड़ा की प्रदर्शनी करें जिससे कि वसन्तोत्सव की उत्कर्ष वृद्धि हो।

(11) सीताष्टमी
फाल्गुन बदि अष्टमी

जब तक संसार में नारी-जाति का अस्तित्व रहेगा, तब तक मर्यादा-पुरुषोत्तम महाराज रामचंद्र की धर्मपत्नी सतीशिरोमणि पतिपरायणा सीता जी की कीर्ति आसूर्य-चंद्र

अचल-अमर बनी रहेगी। क्या सरलता में, क्या सुशीलता में, क्या सुन्दरता में, सभी विषयों में सीतादेवी अद्वितीय थीं। उनकी पावन जीवनी प्रत्येक भारतीय महिला के लिए आदर्श-रूप है। इस पर्व में देवियों को विशेष भाग लेना चाहिए। पर्व के आनन्द-वर्धनार्थ बालोद्यानादि में कन्याओं की मनोरंजक क्रीड़ाओं का आयोजन होना चाहिए।

(12) दयानन्द बोधोत्सव

शिवरात्रि

संसार की साधारण घटनाएं महापुरुषों के जीवन में महान् परिवर्तन उत्पन्न कर देती हैं। शिवरात्रि की साधारण घटना ही दयानन्द के जीवन-भर मूर्तिपूजा के विरुद्ध विकट संग्राम की आदिकर्त्री थी। इसलिए इसको आर्यसमाज के इतिहास में दयानन्द-बोधरात्रि कहते हैं। इस रात्रि को प्रत्येक आर्य के घर में ऋषि दयानन्द के गुणों का कीर्तन होना चाहिए। इस रात्रि को यदि हो सके तो जागरण कर प्रभु का जाप करना चाहिए अथवा श्री स्वामीजी का जीवन चरित्र पढ़ना चाहिए।

(13) वीर-उत्सव (लेखराम-बलिदान)
फाल्गुन शुदि तृतीया

आर्यसामाजिक जगत् में भला कोई ऐसा भी व्यक्ति होगा, जो धर्मवीर पं० लेखराम 'आर्यपथिक' के नाम और काम को न जानता हो ? पं० लेखराम भावुकता और धार्मिक श्रद्धा की साक्षात् मूर्ति थे। अत्यन्त त्यागी, सरलस्वभाव, प्रतिज्ञापालन के पक्के, तेजस्वी, वैदिक सिद्धान्तों के अटल विश्वासी, सुलेखक तथा आर्यप्रचारक थे। मुहम्मदी लोग उनसे बहुत द्वेष रखते थे, उन्होंने छल-कपट से उन्हें मारना चाहा। समय पाकर एक मुसलमान नवयुवक ने उनके पेट में कटार घोंप दी, जिससे फाल्गुन शुदि 3, संवत् 1953 को रात्रि के दो बजे उन्होंने अपने नश्वर शरीर को वैदिक धर्म पर बलिदान कर दिया। हमें चाहिए कि इस पर्व पर धर्मवीर के अन्तिम वाक्य 'आर्यसमाज का लेखा का काम बन्द नहीं होना चाहिए' को सदा ध्यान में रखकर आर्यसमाज के साहित्य की उन्नति करते रहें।

(14) वासन्ती नवशस्येष्टि–होली

फाल्गुन पूर्णिमा

रबी की फसल भारत की सर्व फसलों में श्रेष्ठ है। ऐसे जीवनाधार सर्वपालक शस्य के आगमन पर भारतवासियों का आनंद, उत्सव और रंगरलियां मनाना स्वाभाविक ही है। यह पर्व प्रत्येक हिन्दू के घर, भारतवर्ष में एक सिरे से दूसरे सिरे तक बड़े समारोह से मनाया जाता है। इस पर्व पर सब लोग ऊंच-नीच, छुटाई-बड़ाई का विचार छोड़ स्वच्छ हृदय से आपस में मिलते थे, इतर आदि सुगन्धित द्रव्यों को परस्पर उपहार-रूप से व्यवहार में लाते थे, परन्तु उसके स्थान पर आज रंग बिखेरने की कुप्रथा चल पड़ी है। अतः आर्यपुरुषों को यह कुरीति दूर करने का यत्न करना चाहिए और सभ्य रीति से इस पर्व को मनाना चाहिए। हो सके तो अपने कपड़े परमात्मा की भक्ति के रंग में रंगने चाहिए, जिससे आत्मा पर भी प्रभु-प्रेम का रंग चढ़ सके।

(15) श्रद्धानन्द-बलिदान-दिवस
पौष बदि 14

स्वामी श्रद्धानन्द जी आर्यसमाज के निर्माताओं में से एक थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने आर्यसमाज के वैदिक आदर्श को क्रियात्मक रूप देने के लिए सर्वस्व त्याग दिया। स्वयं अपना जीवन वैदिक आदर्श के अनुसार चार आश्रमों में क्रमशः बिताया। वे धर्मप्रचार, सत्यप्रचार तथा कर्मशीलता की मूर्ति थे। पौष बदि 14 (23 दिसम्बर, 1926) को आप दिल्ली में रोगार्त थे। एक मुसलमान धर्म-चर्चा के बहाने आया। अवसर देखकर स्वामीजी को पिस्तौल का निशाना बना दिया। घातक पकड़ लिया गया। उसे न्यायालय से फांसी की आज्ञा मिली। अस्तु, स्वामीजी का अनुकरण करने के लिए हमें संकल्प करना चाहिए।

(16) राजपाल बलिदान-द्वादशी
चैत बदि 12

म० राजपालजी ने 'आर्यपुस्तकालय' व 'सरस्वती-आश्रम' स्थापित कर आर्य-जगत् का बड़ा उपकार किया—वैदिक

साहित्य प्रकाशित किया। इसी प्रकाशन-विभाग द्वारा आपने 'रंगीला रसूल' नाम की पुस्तक प्रकाशित की जिस पर मुसलमानों ने आपत्ति की। फलस्वरूप महाशयजी पर **26** दिसम्बर, **1927** ई० को खुदाबख्श नामक मुसलमान युवक ने प्रथम घातक प्रहार किया।

मुसलमानों की प्यास इससे भी न बुझी। इल्मुद्दीन नामक एक मुसलमान ने **6** अप्रैल, **1929** को दो बजे दोपहर को महाशयजी पर पुनः आक्रमण किया जो उनकी मृत्यु का कारण बना। घातक पकड़ा गया। उसे न्यायालय से फांसी की आज्ञा मिली। महाशयजी शहीद हो गए। उनका नाम आर्य-जगत् में अमर हो गया, परन्तु मुसलमानों को यह न समझना चाहिए कि महाशय जी की मृत्यु के साथ वैदिक साहित्य का प्रकाशन और आर्य समाज का प्रचार बन्द हो जाएगा। महाशयजी का स्थापित किया हुआ 'आर्यपुस्तकालय' (राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली) अब भी पहले की तरह उच्चकोटि का साहित्य निकालकर वैदिक धर्म की सेवा कर रहा है।

आर्यों के सामाजिक धर्म

1. समाज में जाना, दान व चन्दा देना, सुशीलता से बैठना,

2. प्रत्येक कार्य में उत्साह से भाग लेना,

3. एक-दूसरे के दुःख-सुख में सम्मिलित होना,

4. अपनी बिरादरी बनाना,

5. अपने सम्बन्ध आर्यों से रखना,

6. बालकों का आर्यकुमार-सभाओं से सम्बन्ध जोड़ना,

7. विवाह आदि पौराणिक भाई-बन्धुओं के जाल से निकलकर करना,

8. दूसरों की सहायता करना,

9. अपने संन्यासियों, उपदेशकों, पुरोहितों का मान करना,

10. आर्यसमाज के पत्रों को प्रोत्साहित करना,

11. अपने बालकों को शिल्प-विद्या सिखाना तथा गुरुकुल और कन्या गुरुकुल में भेजना।

प्रातःकाल के भजन

भजन 1

जय जय पिता परम आनन्द दाता।
जगदादि कारण, मुक्ति प्रदाता।।
अनंत और अनादि विशेषण हैं तेरे।
सृष्टि का स्रष्टा तू धर्ता संहर्ता।।
सूक्ष्म से सूक्ष्म तू है स्थूल इतना
कि जिसमें यह ब्रह्माण्ड सारा समाता।।
मैं लालित व पालित हूं पितृस्नेह का।
यह प्राकृत सम्बन्ध है तुझ सेताता।।
करो शुद्ध निर्मल मेरी आत्मा को।
करूं मैं विनय नित्य सायं व प्रातः।।
मिटाओ मेरे भय आवागमन के।
फिरूं न जन्म पाता और बिलबिलाता।।
बिना तेरे है कौन दीनन का बन्धु।
कि जिसको मैं अपनी अवस्था सुनाता।।
'अमी' रस पिलाओ कृपा करके मुझको।
रहूं सर्वदा तेरी कीर्ति को गाता।।

भजन 2

हुआ ध्यान में ईश्वर के जो मगन,
उसे कोई क्लेश लगा न रहा।
जब ज्ञान की गंगा में नहाया,
तो मन में मैल ज़रा न रहा।। 1।।
परमात्मा को जब आत्मा ने,
लिया देख ज्ञान की आंखों से।
प्रकाश हुआ मन में उसके,
कोई उससे भेद छिपा न रहा।। 2।।
पुरुषार्थ ही इस दुनिया में,
हर कामना पूरी करता है।
मनचाहा सुख उस ने पाया,
जो आलसी बनके पड़ा न रहा।। 3।।
दुखदायक हैं सब शत्रु हैं,
विषय हैं जितने दुनिया के।
वह पार हुआ भवसागर से,
जो जाल में इनके फंसा न रहा।। 4।।

ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्या

1. सन्ध्या शब्द का अर्थ

'सन्ध्या' शब्द का अर्थ "सन्ध्यायन्ति सन्ध्याय्यते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या" अर्थात् भली प्रकार ध्यान करते हैं, व किया जाए परमेश्वर का जिसमें वह 'सन्ध्या' है। अतः रात और दिन के संयोग के समय दोनों सन्ध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए।

2. सन्ध्या-सम्बन्धी शास्त्रोपदेश

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे।। 1।।

हम सब उस सौम्यस्वभाव, राजाधिराज, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की वेदमन्त्रों द्वारा स्तुति करते हुए उपासना करें।

योऽन्यां देवतामुपास्ते यथा पशुरेवꣳस देवानाम् ।। 2।। श० का० 14।। 4। 2। 22।।

जो जन परमेश्वर को छोड़कर किसी और की उपासना करता है, वह विद्वानों की दृष्टि में पशु ही है।

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत ।। 3।। षड्विंशब्राह्मण 4। 5

इसलिए मनुष्य प्रातः तथा सायं दोनों समय सन्ध्या किया करें।

उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् ।
ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भ्रदमश्नुते ।। 4।।

तै० 2। 22

सूर्य के उदय तथा अस्त होते समय प्रभु का चिन्तन करने वाला बुद्धिमान् मनुष्य सकल प्रकार के कल्याण को प्राप्त करता है।

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ।। 5।।

जो जन प्रातः तथा सायंकाल सन्ध्या नहीं करता, वह शूद्र के समान है। वह सब प्रकार के कर्मों मे बहिष्कृत करने योग्य है। अतः—

सन्ध्यां सकुशोऽहरहरुपासीत ।। 6।।

बृहज्जाबालोपनिषद् ।। 7। 8।।

शुद्ध, पवित्र, एकान्त स्थान में विधिपूर्वक आसन लगाकर प्रतिदिन दोनों समय सन्ध्या करनी चाहिए। उस समय मन की वृत्तियों को चारों ओर से हटाकर प्रभु-गुणगान में लगायें।

3. सन्ध्या क्यों करनी चाहिए ?

जैसे शरीर के लिए भोजन आवश्यक है, वैसे ही अन्तःकरण की शुद्धि, आत्मिक बल तथा ईश्वर-ज्ञान के लिए सन्ध्या का अनुष्ठान अत्यावश्यक है।

चित्त की स्थिरता, मन की विषय-उपरामता, आत्मोन्नति, मिथ्या अहंकार या अभिमान के नाश, बुद्धि की सूक्ष्मता तथा तीव्रता के लिए सन्ध्यारूपी ज्ञानगंगा में स्नान अवश्यमेव करना चाहिए।

4. सन्ध्या कितने काल करें ?

सन्ध्या केवल सायं व प्रातः दो ही काल करनी चाहिए।

5. सन्ध्या किस समय करनी चाहिए ?

सन्ध्या प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व, सायंकाल सूर्यास्त होने पर करनी चाहिए। सन्ध्या में अपनी इच्छा, शक्ति,

भक्ति, प्रेम तथा श्रद्धानुसार ही समय दिया जाए।

6. आसन आदि कैसा हो ?

एकान्त, शुद्ध, पवित्र स्थान पर नीरोगता तथा बल के देने वाले आसन लगायें, हिलें-डुले नहीं। हाथ आदि कुछ न हिलायें। यदि मक्खी, मच्छर आदि के बैठने का डर हो तो पतला-सा कपड़ा ऊपर ले लें। कृष्ण भगवान् कहते हैं—"नीचे चौकी, ऊपर दर्भासन, उसके ऊपर ऊनी आसन और उस पर निर्मल श्वेत सूती चादर होनी चाहिए। सिर, गर्दन और रीढ़ की हड्डी तीनों एक सीध में रहें।"

7. सन्ध्या-समय मुंह किधर करें ?

प्रातःकाल पूर्व तथा सायंकाल पश्चिम की ओर अथवा देशकाल के अनुसार जिधर चाहें कर लें।

8. सन्ध्या-समय मन के विचार

"मैं पवित्र स्थान को जा रहा हूं। मेरे पास कोई अपवित्र विचार नहीं रहेगा। अब मेरी आत्मा का प्यारे पिता से मेल होगा।" ऐसा शुभ संकल्प धारण करें।

9. सन्ध्या अपनी भाषा में क्यों न करें ?

अपनी भाषा में वह मिठास, अर्थ-विशेषता, दिव्यदृष्टि, गम्भीरता, भाषा का लालित्य, माधुर्य, साधुता तथा असाधारणता नहीं होती, जैसी पवित्र मधुर भगवती वेदवाणी में होती है।

10. क्या यह सन्ध्या वैदिक है ?

इस सन्ध्या में केवल दूसरा और तीसरा मन्त्र वेद का नहीं, परन्तु इन जैसे मन्त्र अथर्ववेद 19। 60। 1, 2 में पाए जाते हैं, इसलिए ये वैदिक हैं।

एक निवेदन

पाठक महोदय ! आजकल प्रायः सारे देश में सन्ध्या का उच्चारण तथा पठन-पाठन दोषयुक्त दिखाई देता है। एक ही बेढंगी चाल और स्वर से सर्वत्र इसका आलाप किया जाता है। किस शब्द का किस शब्द के साथ सम्बन्ध है, इसे किसके साथ मिलाकर उच्चारण करना चाहिए—यह संस्कृत के न जानने तथा सिखलाने वाले योग्य गुरु के

अभाव के कारण कुछ का कुछ और अर्थ का अनर्थ कर दिया जाता है।

(1) इस सन्ध्या में दो के अतिरिक्त शेष प्रत्येक मन्त्र का ठीक-ठीक प्रमाण दे दिया गया है।

(2) प्रत्येक मन्त्र चारों वेदों तथा अन्यत्र कहां-कहां पर आया है, यह भी दर्शा दिया गया है।

(3) प्रत्येक मन्त्र का ऋषि, देवता तथा छन्द भी दे दिया गया है, जिससे मन्त्र का अर्थ तथा छन्दानुसार उच्चारण के लिए विभाग किया जा सके।

(4) वैदिक कोषों से मिलाकर तथा श्रीस्वामी दयानन्दकृत 'पंचमहायज्ञ विधि' के अनुसार अर्थ ठीक कर दिए गए हैं।

(5) हमें सन्ध्या क्यों तथा किस समय करनी चाहिए, यह भी वेदादि सत्शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा ऊपर दर्शा दिया गया है।

(6) अर्थों तथा छन्दों के अनुसार विरामचिह्न [,] देकर मन्त्रों का उच्चारण की सुगमता के लिए, विभाग कर दिया गया है। मंत्रों के अर्थ सरल भाषा में दिए हैं।

।। ओ३म् ।।

वैदिक संध्या

आचमन मन्त्र

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय
आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु नः।। 1।।

यजुर्वेद 36। 12।। दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । आपो देवता। गायत्री छन्दः। षड्ज स्वरः ।।

ऋग० 10। 9। 4।। अथर्व० 1। 6। 1।। सामवेद पू० प्र० 1। अर्ध 1। दशति 3। मं० 13।। चारों वेदों में है। [ज० 1। 1। 1।।]

शब्दार्थ

ओ३म्—रक्षा करने वाले। शम्—कल्याणकारी। नः—हमारे लिए। देवीः—सर्वप्रकाशक। अभिष्टये—मनोवांछित फल के लिए। आपः—सर्वव्यापक प्रभु। भवन्तु—होवे (होवें)। पीतये—पूर्णानन्द (मोक्ष) प्राप्ति के लिए। शंयोः—सुख-शान्ति और कल्याण की। अभि—चारों ओर से। स्रवन्तु—धीमी-धीमी

वर्षा करे (करें)। नः-हम पर।

भावार्थ

सर्वव्यापक और सर्वप्रकाशक परमेश्वर मन मांगे पदार्थ, सुख-शान्ति और पूर्ण आनन्द तथा मुक्ति की प्राप्ति के लिए हम सब पर कल्याणकारी होवें और चारों ओर से सुख की वृष्टि करें।

इन्द्रियस्पर्श

ओ३म् वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुः चक्षुः। ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः। ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशो बलम्। ओं करतल-करपृष्ठे ।। 2।।

शब्दार्थ

वाक् वाक्—जिह्वा तथा वाणी। प्राणः प्राणः—नासिका तथा श्वासोच्छ्वास। चक्षुः चक्षुः—आंखें तथा देखने की शक्ति। श्रोत्रम् श्रोत्रम्—कान तथा श्रवण शक्ति। नाभिः—नाभि (धुन्नी)। हृदयम्—हृदय (दिल)। कण्ठः—कण्ठ (गला) शिरः—सिर (मस्तक)। बाहुभ्याम्—दोनों भुजाओं से।

यशः—कीर्ति। बलम्—शक्ति, पराक्रम। करतल—हथेली। करपृष्ठे—हाथ का पृष्ठ भाग।

भावार्थ

परमेश्वर की अपार दया से मेरे मुख में रसना तथा बोलने की शक्ति, नासिका द्वार व उनमें प्राण तथा सूंघने की शक्ति, आंखें तथा देखने की शक्ति, कान तथा सुनने की शक्ति मरणपर्यन्त विद्यमान रहे। नाभि-चक्र ठीक काम करे। हृदय समुद्र की भांति गम्भीर तथा विशाल हो।

गले से मधुर स्वर निकले, सिर ठण्डा रहे। भुजाएं सदा यश और बल कमाने वाले काम करें। हाथ स्वस्थ रहें। प्रभो! जान-बूझकर दशों इन्द्रियों से पाप कभी न करूं।

मार्जन-मन्त्र

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि।
ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः।
ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे।
ओ३म् महः पुनातु हृदये।

ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम्।
ओ३म् तपः पुनातु पादयोः।
ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि।
ओ३म् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।। 3।।

शब्दार्थ

भूः—जगदाधार, प्राणस्वरूप। पुनातु—पवित्रता देवे (पवित्र करे)। शिरसि—सिर में। भुवः—दुःखनाशक। नेत्रयोः—आंखों में। स्वः—सुख-स्वरूप, सुखदाता। कण्ठे—गले में। महः—बड़ा। हृदये—हृदय में। जनः—पिता, पालक। नाभ्याम्—नाभि (धुन्नी) में। तपः—पापियों का दण्डदाता, ज्ञानस्वरूप। पादयोः—पांवों में। सत्यम्—सत्यस्वरूप, अविनाशी। पुनः—फिर। खम्—आकाश (की भांति)। ब्रह्म—महान् ईश्वर। सर्वत्र—सब स्थान तथा अंगों में।

भावार्थ

प्राणप्रिय परमेश्वर, मेरे सिर को; दुःख-दूरकर्ता, आंखों को; सुखदाता, गले को; सबसे बड़ा प्रभु, हृदय को; सबका पिता, नाभिचक्र को; दुष्टों को सन्तापकारी, पैरों को;

एकरस प्रभु, फिर सिर को और आकाशवत् सर्वव्यापक पिता, सब अंगों को पवित्र तथा पुष्ट करे।

प्राणायाम-मन्त्र

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः।
ओ३म् स्वः। ओ३म् महः।
ओ३म् जनः। ओ३म् तपः।
ओ३म् सत्यम्।। 4।।

(तैत्ति० आ० । प्रपा० 10। अनु० 27।। नारायणोपनिषद् मं० 35।।)

भावार्थ

हे सर्वरक्षक प्रभो ! आप प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, सबसे बड़े, सबके पिता, दुष्टों को दण्ड देने वाले, अन्तर्यामी तथा सत्यस्वरूप हैं।

सूचना—बल से प्राणवायु को बाहर निकाल देवें। तब धीरे-धीरे श्वास लेवें। शक्ति के अनुसार इसे भीतर रोके रखें। तब शनैः-शनैः श्वास बाहर छोड़ देवें। यह एक प्राणायाम हुआ, इसी प्रकार समय, इच्छा तथा शक्ति के अनुसार 3 से 21 तक प्राणायाम करने का विधान है।

अघमर्षण-मन्त्र

(ईश्वर-रचना-चिन्तन से पाप-दलन-मन्त्र)

ओ३म् ऋतंञ्च सत्यंञ्चाभीद्धात्
तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत।
ततः समुद्रो अर्णवः।। 1।। 5।।

ऋ० 10। 190। 1।। अघमर्षणो माधुच्छन्दसः ऋषि। भाववृत्तम् देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। [नारायणोप० मं० 13।।]।

शब्दार्थ

ऋतम्—वेद शास्त्र। च—और। सत्यम्—स्थूल तथा सूक्ष्म जगत् की कारणरूप प्रकृति। अभि—चारों ओर से। इद्धात्—प्रकाशस्वरूप से। तपसः—ज्ञानस्वरूप से। अधि—अजायत—उत्पन्न हुई। ततः—उसी से। रात्रि—महाप्रलय। समुद्रः—भूमिस्थ समुद्र (परमाणुरूप)। अर्णवः—आकाशस्थ मेघरूप जलसागर।

भावार्थ

उसी ज्ञानमय तथा सब प्रकार से प्रकाशमान परमात्मा

की अनन्त सामर्थ्य से वेद और त्रिगुणात्मक प्रकृति उत्पन्न हुई, उसी की शक्ति से महाप्रलय तथा सर्वत्र आकाश में जल उत्पन्न हुआ।

ओ३म् समुद्रादर्णवादधि
संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्
विश्वस्य मिषतो वशी।। 2।। 6।।

ऋ० 10। 190। 2।। अघमर्षणो माधुच्छन्दसः ऋषिः। भाववृत्तम् देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। [नारायणोप० मं० 14।।]

शब्दार्थ

समुद्रात्—भूमिस्थ समुद्र से। अर्णवात्—आकाशस्थ जलकोष से। अधि—पीछे। संवत्सरः—वर्ष आदि काल। अजायत—उत्पन्न हुआ। अहोरात्राणि—दिन और रात। विदधत्—बनाए। विश्वस्य—जगत् के। मिषतः—सहज स्वभाव से। वशी—वश में रखने वाले, प्रभु ने।

भावार्थ

सकल संसार को अपने वश में रखने वाले परमात्मा

ने अपने सहज स्वभाव से जलकोष रचने के अनन्तर, काल के विभाग, दिन-रात तथा वर्ष आदि उत्पन्न करने वाले रवि को रचा।

ओ३म् सूर्याचन्द्रमसौ धाता
यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं
चान्तरिक्षमथो स्वः।। 3। 7।।

ऋ० 10। 190। 3।। अघमर्षणो माधुच्छन्दसः ऋषिः। भाववृत्तम देवता। पाद० निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। [नारायणोप० मं० 14।]

शब्दार्थ

सूर्याचन्द्रमसौ—सूर्य और चन्द्र को। धाता—धारण करने वाले ने। यथापूर्वम्—जैसे पहले कल्प की सृष्टि में। अकल्पयत्—बनाया। दिवम्—द्युलोक को। पृथिवीम्—भूमिलोक को। अन्तरिक्षम्—अन्तरिक्षलोक को। अथो—और। स्वः—भूमि तथा द्युलोक के बीच के लोक-लोकान्तरों को।

भावार्थ

सारे जगत् को धारण तथा पालन-पोषण करने वाले

परमेश्वर ने जैसे पहले कल्प की सृष्टि में रचना की थी, ठीक उसी प्रकार अब इस कल्प में भी सूर्य और चन्द्र को, अग्निरूपी अपने सर्वोत्तम प्रकाश को, पृथ्वी को, आकाश को और भूमि तथा द्युलोक के बीच के लोक-लोकान्तरों को रचा।

मनसा परिक्रमा-मन्त्र

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।। 1।। 8।।

अथर्वः 3। 27। 1।। अथर्वा ऋषिः। प्राची, अग्नि, असितः आदित्याः देवता। अष्टिः छन्दः।।

शब्दार्थ

प्राचीन—पूर्व अथवा सामने। दिग्—दिशा में। अग्निः—प्रकाशस्वरूप परमेश्वर। अधिपतिः—राजा, स्वामी। असितः—बन्धनरहित। रक्षिता—बचानेवाला। आदित्याः—सूर्य की किरणें, विद्वान्। इषवः—बाणरूप। तेभ्यो नमः—उन

सबके लिए नमस्कार हो। अधिपतिभ्यो नमः—स्वामियों के लिए नमस्कार हो। रक्षितृभ्यो नमः—रक्षा करने वालों के लिए नमस्कार हो। इषुभ्यो नमः—तीरों के लिए नमस्कार हो। एभ्यो अस्तु—इन सबके लिए नमस्कार हो। यः—जो। अस्मान्—हमको। द्वेष्टि—द्वेष (वैर) करता है। यम्—जिसको (से)। वयम्—हम। द्विष्मः—वैर करते हैं। तम्—उसको। वः-आपको। जम्भे—जबड़े में (न्याय पर)। दध्मः—रखते हैं (छोड़ते हैं)।

भावार्थ

ज्ञानस्वरूप परमेश्वर पूर्व दिशा अथवा सामने की ओर का स्वामी है। वह सर्वप्रकार के बन्धनों से रहित है, वही हमारी रक्षा करने वाला है। सूर्य की किरणें उसकी रक्षा के साधन हैं। इन सब स्वामियों, रक्षा करने वालों तथा तीर-रूप रक्षा के साधनों को बार-बार नमस्कार हो। जो जन अज्ञानवश हमसे वैर करता है और जिससे हम वैर करते हैं, उनको आपके न्यायरूपी जबड़े में रखते हैं।

ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता

पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।। 2।। 9।।

अ० 3। 27। 2।। अथर्वा ऋषिः। दक्षिणा, इन्द्रः, तिरश्चिराजिः, पितरः देवता। अत्यष्टिः छन्दः।।

शब्दार्थ

दक्षिणा—दाहिनी। दिक्—दिशा में। इन्द्रः—परमैश्वर्ययुक्त प्रभु। अधिपतिः—स्वामी। तिरश्चि—टेढ़े स्वभाव तथा चाल वाले मनुष्य, पशु तथा। राजिः (जी)—पंक्ति, समूह। रक्षिता—बचाने वाला। पितरः—विद्वान् जन। इषवः—बाण।

भावार्थ

प्रभो ! आप परमैश्वर्य के स्वामी हमारे दक्षिण की ओर भी विराजमान हैं। आप ही हमारे स्वामियों के स्वामी हैं। बुरे स्वभाव वाले मनुष्य तथा टेढ़ी चाल चलने वाले सर्पादि बिना हड्डी के पशुओं से हमारी रक्षा करते हैं। और ज्ञानियों द्वारा हमें ज्ञान प्रदान करते हैं। उन सब (इससे आगे पूर्ववत्:)।

ओ३म् प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षिताऽन्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।। 3।। 10।।

अ० 3। 27। 3।। अथर्वा ऋषिः। प्रतीची वरुणः, पृदाकुः, अन्नम् देवता। अष्टिः छन्दः।।

शब्दार्थ

प्रतीची—पश्चिम या पृष्ठभाग। दिग्—दिशा में। वरुणः—सर्वोत्तम, चुनने योग्य। अधिपतिः—स्वामी। पृदाकुः (कू)—सर्प, बिच्छु तथा व्याघ्र आदि कुशब्द करने वाले पशु। रक्षिता—रक्षा करने वाले पशु। अन्नम्—अनाज भोजन। इषवः—बाण।

भावार्थ

हे सौन्दर्य-सागर ! आप हमारी पिछली ओर भी विद्यमान हैं। आप ही हमारे राजाधिराज हैं। भयंकर शब्द करने वाले तथा विषधारी प्राणियों से रक्षा करने वाले हैं। सर्वप्रकार के अन्न उत्पन्न करके हमारा पालन करते हैं। उन सब ... (पूर्ववत्) !

ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।। 4।। 11।।

अ० 3। 27। 4।। अथर्वा ऋषिः। उदीची, सोमः, स्वजः, अशनिः देवता। अष्टिः छन्दः ।।

शब्दार्थ

उदीची—उत्तर अथवा बायीं। दिक्—दिशा में। सोमः—सौम्य, शान्तस्वरूप प्रभु। अधिपतिः—स्वामी। स्वजः—(सु+अजः=स्व+जः) भली प्रकार जन्मरहित, स्वयम्भू। रक्षिता—रक्षा करने वाला। अशनिः—बिजली। इषवः—बाण।

भावार्थ

हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्! आप हमारी बायीं ओर भी व्यापक हैं। आप हमारे परम स्वामी हैं। आपके माता-पिता आदि जन्मदाता कोई नहीं। आप स्वयम्भू और हमारे रक्षक हैं। आप ही विद्युत् द्वारा हमारे शरीर में रुधिर-संचालन करके हमें जीवित रखते हैं।

ओ३म् ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।। 5।। 12।।

अ० 3। 27। 5।। अथर्वा ऋषिः। ध्रुवा, विष्णुः, कल्माषग्रीवः, वीरुधः देवता। भूरिग् अष्टिः छन्दः।।

शब्दार्थ

ध्रुवा—स्थिर, निश्चल, निचली। दिक्—ओर। विष्णुः—सर्वव्यापक। अधिपतिः—स्वामी। कल्माष—चित्र, कृष्ण तथा चितकबरे हरित रंग वाले। ग्रीवः—गर्दन। रक्षिता—रक्षक। वीरुधः—विस्तृत लताएं, वृक्ष। इषवः—बाण।

भावार्थ

हे सर्वत्र व्यापक परमेश्वर! जो हमारे नीचे की ओर हैं, उनमें भी आप व्याप्त हैं। इधर भी आप ही हमारे स्वामी हैं, जिनके हरित रंग वाले वृक्ष आदि ग्रीवा के समान हैं। लता, वृक्ष आदि हमारी रक्षा के लिए बाणरूप साधन हैं।

ओ३म् ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता

वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।। 6।। 13।।

अ० 3। 27। 6।। अथर्वा ऋषिः। ऊर्ध्वा, बृहस्पतिः, श्वित्रः, वर्षम् देवता। अष्टिः छन्दः।।

शब्दार्थ

ऊर्ध्वा—ऊपर। दिग्—दिशा में। बृहस्पतिः—वेद-शास्त्ररूपी वाणी का तथा सूर्य, आकाशादि बड़े-बड़े लोकों का पति—स्वामी। अधिपतिः—अधिराज। श्वित्रः—शुद्धस्वरूप, ज्ञानमय, श्वेत कुष्ठ। रक्षिता—स्वामी। वर्षम्—वर्षा। इषवः—बाण।

भावार्थ

हे वेदादि सत्य शास्त्रों तथा लोकों के राजाधिराज, सर्वमहान् प्रभो ! आप हमारे ऊपर की दिशा में विराजमान हैं। उधर भी आप ही हमारे स्वामी हैं। आप पवित्र स्वरूप, ज्ञानमय, कुष्ठादि रोगों से भी रक्षा करने वाले हैं। वर्षा आदि हमारी रक्षा के साधन हैं।

उपस्थानमन्त्र

ओ३म् उद्वयन्तमसस्परि
स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म
ज्योतिरुत्तमम्।। 1।। 14।।

यजुर्वेद 35। 14।। आदित्याः देवाः ऋषिः। सूर्यो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।।

[ऋग्० 1। 50। 10।। यजु० 20। 21। 27। 10। 38। 24।। अथर्व० 7। 53। 7।।]

शब्दार्थ

उत्—अत्यन्त उत्तम, श्रद्धा से। वयम्—हम। तमसः—अन्धकार से। परि—परे, दूर। स्वः—सुखस्वरूप। पश्यन्तः—देखते हुए। उत्तरम्—प्रलय के पीछे रहने वाले को। देवम्—सर्वानन्ददाता, दिव्य गुण वाले को। देवत्रा—उत्कृष्ट देव को। सूर्यम्—चराचर की आत्मा, प्रभु को। अगन्म—प्राप्त होवें। ज्योतिः—प्रकाशस्वरूप को। उत्तमम्—सर्वोत्कृष्ट को।

भावार्थ

हे परमदेव परमेश्वर ! आप सब संसार के अन्धकार